Mains Exam Series

दृष्टि The Vision

आई.ए.एस.

मेन्स सॉल्व्ड पेपर्स

सामान्य अध्ययन एवं निबंध

चतुर्थ संस्करण

- भारतीय विरासत एवं संस्कृति, विश्व इतिहास
- भारत एवं विश्व का भूगोल, भारतीय समाज
- भारतीय संविधान, शासन एवं अंतर्राष्ट्रीय संबंध
- अर्थव्यवस्था, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी, सुरक्षा
- जैव विविधता, पर्यावरण एवं आपदा प्रबंधन
- नीतिशास्त्र, सत्यनिष्ठा और अभिरुचि

विगत वर्षों के आई.ए.एस. (मुख्य परीक्षा)
के प्रश्नपत्रों का खण्डवार हल

Think IAS

दृष्टि The Vision

Think Drishti

Quick Book शृंखला की पुस्तकें

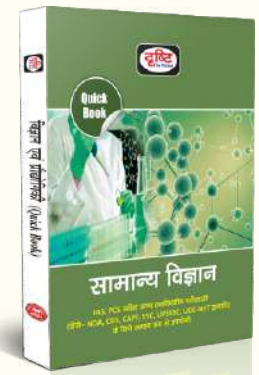

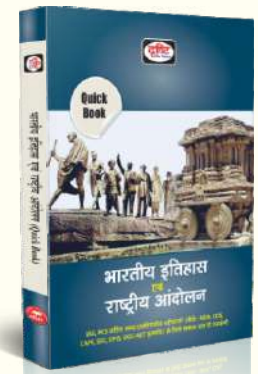

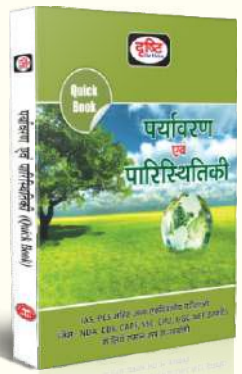

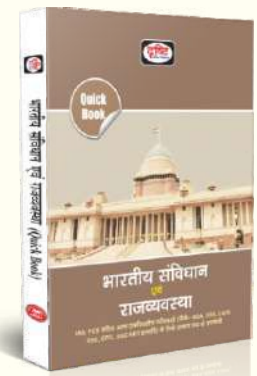

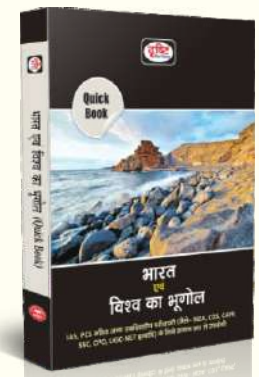

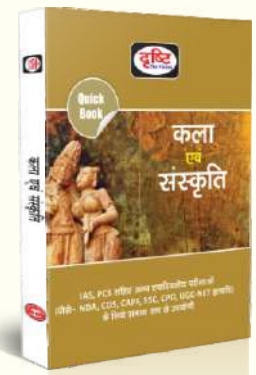

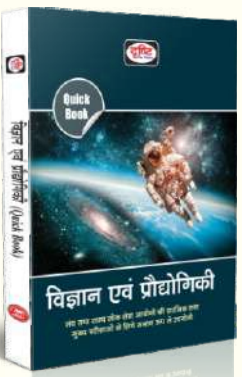

NCERT शृंखला की पुस्तकें

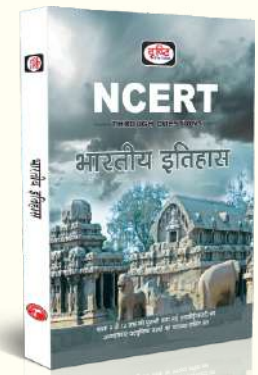

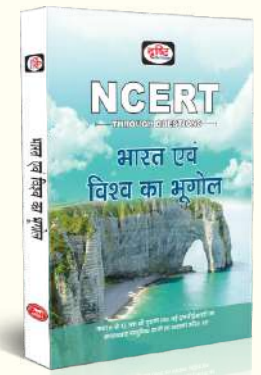

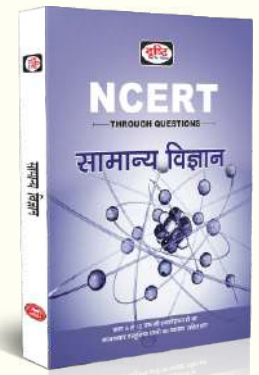

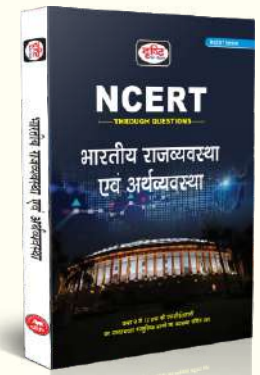

विस्तृत जानकारी के लिये कॉल करें 8448485516, 87501-87501, 011-47532596

मेन्स सॉल्व्ड पेपर्स

सामान्य अध्ययन तथा निबंध

2013–19 तक के आई.ए.एस.
(मुख्य परीक्षा) के प्रश्नों का खण्डवार हल

दृष्टि पब्लिकेशन्स

641, प्रथम तल, डॉ. मुखर्जी नगर, दिल्ली-110009

फोन: 011-47532596, 87501 87501

वेबसाइट

www.drishtipublications.com, www.drishtiias.com

ई-मेल

booksteam@groupdrishti.com

चतुर्थ संस्करण- जनवरी 2020

मूल्य : ₹ 360

प्रकाशक

दृष्टि पब्लिकेशन्स,
(A Unit of VDK Publications Pvt. Ltd.)
641, प्रथम तल,
डॉ. मुखर्जी नगर,
दिल्ली-110009

विधिक घोषणाएँ

- इस पुस्तक में प्रकाशित सूचनाएँ, समाचार, ज्ञान एवं तथ्य पूरी तरह से सत्यापित किये गए हैं। फिर भी, यदि कोई जानकारी या तथ्य गलत प्रकाशित हो गया हो तो प्रकाशक, संपादक या मुद्रक उससे किसी व्यक्ति-विशेष या संस्था को पहुँची क्षति के लिये ज़िम्मेदार नहीं है।
- हम विश्वास करते हैं कि इस पुस्तक में छपी सामग्री लेखकों द्वारा मौलिक रूप से लिखी गई है। अगर कॉपीराइट उल्लंघन का कोई मामला सामने आता है तो प्रकाशक को ज़िम्मेदार नहीं ठहराया जाएगा।
- सभी विवादों का निपटारा दिल्ली न्यायिक क्षेत्र में होगा।
- © **कॉपीराइट :** दृष्टि पब्लिकेशन्स (A Unit of VDK Publications Pvt. Ltd.), सर्वाधिकार सुरक्षित। इस प्रकाशन के किसी भी अंश का प्रकाशन अथवा उपयोग, प्रतिलिपीकरण, ऐसे यंत्र में भंडारण जिससे इसे पुनः प्राप्त किया जा सकता हो या स्थानान्तरण, किसी भी रूप में या किसी भी विधि से (इलेक्ट्रॉनिक, यांत्रिक, फोटो-प्रतिलिपि, रिकॉर्डिंग या किसी अन्य प्रकार से) प्रकाशक की पूर्वानुमति के बिना नहीं किया जा सकता।
- एम.पी. प्रिंटर्स, बी-220, फेज़-2, नोएडा (उत्तर प्रदेश) से मुद्रित।

दो शब्द

प्रिय पाठको,

सिविल सेवा की तैयारी कर रहे प्रत्येक अभ्यर्थी का सपना होता है कि वह सिविल सेवक बने। इस सपने को साकार करने के लिये वह कड़ी मेहनत भी करता है। परंतु यह सपना सिर्फ कड़ी मेहनत से नहीं, बल्कि उसके साथ सटीक रणनीति अपनाने से ही साकार हो सकता है। ध्यातव्य है कि यू.पी.एस.सी. द्वारा सिविल सेवा परीक्षा तीन चरणों (वस्तुनिष्ठ, लिखित एवं मौखिक) में आयोजित की जाती है। निस्संदेह इसका प्रत्येक चरण अपने आप में महत्त्वपूर्ण होता है, परंतु इनमें लिखित परीक्षा (मुख्य परीक्षा) सबसे महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इसमें अच्छे प्रदर्शन के बिना आप अंतिम सूची में स्थान नहीं बना सकते।

आपके इस सपने को साकार करने के लिये ही दृष्टि पब्लिकेशन्स ने वर्ष 2017 में 'आई.ए.एस. मेन्स सॉल्व्ड पेपर्स' पुस्तक प्रकाशित की थी। आपने इस पुस्तक को हाथों-हाथ लेकर हमारा उत्साह बढ़ाया। आपसे प्राप्त इन्हीं उत्साहजनक प्रतिक्रियाओं के फलस्वरूप हमें एक वर्ष के अंदर ही इस पुस्तक का द्वितीय संस्करण निकालना पड़ा जिसमें वर्ष 2017 की मुख्य परीक्षा के सामान्य अध्ययन एवं निबंध के प्रश्नपत्रों के हल को भी शामिल किया गया था। इसी कड़ी को आगे बढ़ाते हुए अब हम इसके चतुर्थ संस्करण के साथ आपके समक्ष उपस्थित हैं। इसमें वर्ष 2019 की मुख्य परीक्षा के प्रश्नपत्रों के हल भी सम्मिलित हैं।

यू.पी.एस.सी. द्वारा प्रकाशित रिपोर्ट्स के अध्ययन से पता चलता है कि हाल के वर्षों में अंतिम चयन सूची में हिन्दी माध्यम के अभ्यर्थियों की हिस्सेदारी निरंतर कम हुई है। इस संदर्भ में, यदि अभ्यर्थियों के परिणाम का विश्लेषण करें तो ज्ञात होता है कि सामान्य अध्ययन के प्रश्नपत्रों में अच्छे अंक नहीं ला पाना ही उनकी असफलता का सबसे बड़ा कारक है और इसकी बुनियादी वजह है- प्रश्न की मांग के अनुसार उत्तर न दे पाना। इस समस्या का समाधान यही हो सकता है कि अभ्यर्थी के पास एक ऐसी मानक पुस्तक हो जो प्रश्नों की मांग के अनुरूप सामान्य अध्ययन के उत्तर प्रस्तुत करती हो ताकि अभ्यर्थी उन उत्तरों को पढ़कर अपनी लेखन शैली की कमियों को दूर कर सकें।

गौरतलब है कि बाज़ार में सिविल सेवा मुख्य परीक्षा के सॉल्व्ड पेपर्स की कमी नहीं है, परंतु उनके अध्ययन के उपरांत हमारी संपादकीय टीम ने पाया कि उनमें प्रश्नों के साथ पर्याप्त न्याय नहीं किया गया है। इसके अलावा, उनमें से कई पुस्तकों में अद्यतनता का अभाव एवं अशुद्धियों की भरमार भी है। ऐसी अधिकांश पुस्तकों में प्रश्नों में उल्लिखित महत्त्वपूर्ण शब्दों जैसे 'समीक्षा', 'आलोचनात्मक विवेचना', 'मूल्यांकन' और 'व्याख्या' को एक ही तराज़ू पर तौलते हुए सारे प्रश्नों के उत्तर एक जैसे तरीके से लिख दिये गए हैं। इस तरह के सॉल्व्ड पेपर्स अभ्यर्थियों की दुविधा का समाधान करने की बजाय उन्हें और उलझा देते हैं। इन्हीं सब स्थितियों को देखते हुए हमारी टीम ने यह पुस्तक तैयार करने की चुनौती स्वीकार की। हमने इसके लिये एक कोर टीम बनाई जिसमें मुख्य परीक्षा का सुदीर्घ अनुभव रखने वाले 15 सदस्य शामिल थे। इसी अनुभवी टीम ने रात-दिन एक करके इस अहम कार्य को अंजाम तक पहुँचाया।

पुस्तक में हमने प्रश्नों की मांग के अनुरूप उत्तर प्रस्तुत किये हैं। भूगोल के उत्तरों में यथोचित स्थानों पर मानचित्रों एवं रेखाचित्रों का प्रयोग भी किया गया है। उत्तरों की गुणवत्ता व प्रामाणिकता बनाए रखने के लिये विभिन्न मंत्रालयों एवं आयोगों की रिपोर्ट्स एवं सुझाव यथोचित स्थानों पर दिये गए हैं। इसके साथ ही हमने सामान्य अध्ययन के चारों प्रश्नपत्रों को पाठ्यक्रम के आधार पर उपखडों में भी विभाजित किया है। इससे अभ्यर्थियों को उत्तर की आदर्श संरचना समझने के साथ-साथ परीक्षा के ट्रेंड का विश्लेषण करने में भी सहायता मिल सकेगी।

गौरतलब है कि हमने उत्तर लेखन में यू.पी.एस.सी. द्वारा निर्धारित शब्द सीमा का कई स्थानों पर जान-बूझकर पालन नहीं किया है क्योंकि हम चाहते थे कि अभ्यर्थी उत्तर पढ़ते समय उस टॉपिक के विविध पहलुओं से परिचित हों ताकि वे मुख्य परीक्षा या साक्षात्कार के दौरान सुलझी हुई राय प्रस्तुत कर सकें। अभ्यर्थी को यू.पी.एस.सी. के प्रश्नों का अनुवाद समझने में कोई परेशानी न हो, इसके लिये हिन्दी के साथ-साथ अंग्रेज़ी में भी प्रश्न दिये गए हैं। साथ ही, यू.पी.एस.सी. द्वारा पिछले वर्षों के दौरान अनुवाद में की गई भूलों को भी यथास्थान इंगित किया गया है ताकि अभ्यर्थी परीक्षा भवन में प्रश्नपत्र पढ़ने के दौरान सचेत रहें एवं उत्तर लिखते समय अंग्रेज़ी प्रश्न पर निगाह रखने की आदत विकसित कर लें।

इस पुस्तक में सामान्य अध्ययन के साथ-साथ निबंध के प्रश्नपत्रों का भी हल दिया गया है। वरिष्ठ एवं अनुभवी लेखकों द्वारा समग्रता से लिखे गए ये निबंध सहज प्रवाह एवं सटीक अभिव्यक्ति के उदाहरण हैं। इन निबंधों को पढ़कर अभ्यर्थियों में न केवल किसी टॉपिक के विश्लेषण की क्षमता विकसित होगी, बल्कि वे विचारों को संतुलित तरीके से व्यक्त करने की कला से भी अवगत होंगे।

कुल मिलाकर, हमारी टीम को पूरा विश्वास है कि सिविल सेवा मुख्य परीक्षा पर आधारित यह पुस्तक आपके उत्तर लेखन के स्तर में न केवल गुणात्मक सुधार लाएगी, बल्कि आपकी सफलता में केंद्रीय भूमिका भी निभाएगी। आपसे निवेदन है कि पुस्तक पढ़कर हमें ज़रूर बताएँ कि हम अपने उद्देश्य में कितने सफल रहे? अगर आपको इस पुस्तक में कोई भी कमी दिखे या आप इसमें कोई सुधार चाहते हों तो कृपया **अपनी बात बेझिझक '8130392355' नंबर पर वाट्सएप मैसेज से भेज दें।** आपकी टिप्पणियों के आधार पर हम पुस्तक के आगामी संस्करणों को और बेहतर बना सकेंगे।

साभार,

प्रधान संपादक

दृष्टि पब्लिकेशन्स

अनुक्रमणिका

खंड-1

2013–19 तक आई.ए.एस. (मुख्य परीक्षा) में पूछे गए सामान्य अध्ययन के प्रश्नपत्रों का अंकवार वर्गीकरण एवं वर्षानुगत हल 1-362

सामान्य अध्ययन-1 7–96

- भारतीय विरासत एवं संस्कृति
- आधुनिक भारत का इतिहास (स्वतंत्रता से पूर्व)
- आधुनिक भारत का इतिहास (स्वतंत्रता के पश्चात्)
- विश्व इतिहास
- भारतीय समाज एवं सामाजिक समस्याएँ
- भारत एवं विश्व का भूगोल

सामान्य अध्ययन-2 97–184

- भारतीय संविधान एवं राजव्यवस्था
- गवर्नेंस
- सामाजिक न्याय
- अंतर्राष्ट्रीय संबंध

सामान्य अध्ययन-3 185–280

- अर्थव्यवस्था
- विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी
- पर्यावरण
- आपदा प्रबंधन
- सुरक्षा

सामान्य अध्ययन-4 281–362

- नीतिशास्त्र, सत्यनिष्ठा और अभिरुचि
- केस स्टडीज़

खंड-2

2016–19 तक आई.ए.एस. (मुख्य परीक्षा) में पूछे गए निबंधों का वर्षानुगत हल 363-434

- **वर्ष 2019**
- **वर्ष 2018**
- **वर्ष 2017**
- **वर्ष 2016**

खंड 1

2013–19 तक आई.ए.एस. (मुख्य परीक्षा) में पूछे गए सामान्य अध्ययन के प्रश्नपत्रों का अंकवार वर्गीकरण एवं वर्षानुगत हल

वर्ष 2013 से 2019 तक सिविल सेवा मुख्य परीक्षा में सामान्य अध्ययन के प्रश्नपत्रों का खंडवार एवं अंकवार वर्गीकरण

सामान्य अध्ययन प्रश्न पत्र-1

भारत एवं विश्व का इतिहास	प्रश्नों की संख्या/ अंक : 2019	प्रश्नों की संख्या/ अंक : 2018	प्रश्नों की संख्या/ अंक : 2017	प्रश्नों की संख्या/ अंक : 2016	प्रश्नों की संख्या/ अंक : 2015	प्रश्नों की संख्या/ अंक : 2014	प्रश्नों की संख्या/ अंक : 2013
भारतीय विरासत एवं संस्कृति	1 (10 अंक)	4 (50 अंक)	1 (10 अंक)	2 (25 अंक)	2 (25 अंक)	4 (40 अंक)	3 (20 अंक)
आधुनिक भारत का इतिहास (स्वतंत्रता से पूर्व)	4 (50 अंक)	1 (10 अंक)	5 (65 अंक)	3 (37.5 अंक)	2 (25 अंक)	3 (30 अंक)	4 (40 अंक)
आधुनिक भारत का इतिहास (स्वतंत्रता के पश्चात्)	–	1 (15 अंक)	–	1 (12.5 अंक)	1 (12.5 अंक)	-	4 (40 अंक)
विश्व इतिहास	1 (15 अंक)	–	1 (10 अंक)	1 (12.5 अंक)	2 (25 अंक)	3 (30 अंक)	4 (40 अंक)
अंक	75 अंक	75 अंक	85 अंक	87.5 अंक	87.5 अंक	100 अंक	140 अंक
भारतीय समाज एवं सामाजिक समस्याएँ	**प्रश्नों की संख्या/ अंक : 2019**	**प्रश्नों की संख्या/ अंक : 2018**	**प्रश्नों की संख्या/ अंक : 2017**	**प्रश्नों की संख्या/ अंक : 2016**	**प्रश्नों की संख्या/ अंक : 2015**	**प्रश्नों की संख्या/ अंक : 2014**	**प्रश्नों की संख्या/ अंक : 2013**
भारतीय समाज की विशेषताएँ	1 (10 अंक)	1 (10 अंक)	2 (25 अंक)	-	1 (12.5 अंक)	1 (10 अंक)	-
महिलाओं से संबंधित मुद्दे	1 (15 अंक)	1 (15 अंक)	–	-	1 (12.5 अंक)	3 (30 अंक)	1 (10 अंक)
गरीबी एवं विकासात्मक विषय	–	2 (25 अंक)	–	1 (12.5 अंक)	1 (12.5 अंक)	–	–
शहरीकरण	1 (15 अंक)	–	1 (15 अंक)	2 (25 अंक)	2 (25 अंक)	–	1 (10 अंक)
जनसंख्या	1 (10 अंक)	–	–	-	2 (25 अंक)	–	–
भारतीय समाज पर भूमंडलीकरण का प्रभाव	1 (15 अंक)	1 (15 अंक)	–	1 (12.5 अंक)	–	–	1 (10 अंक)
संप्रदायवाद, क्षेत्रवाद, धर्मनिरपेक्षता	2 (25 अंक)	2 (25 अंक)	1 (15 अंक)	1 (12.5 अंक)	–	1 (10 अंक)	1 (10 अंक)
सामाजिक सशक्तीकरण	–	–	1 (10 अंक)	1 (12.5 अंक)	1 (12.5 अंक)	–	–
अंक	90 अंक	90 अंक	65 अंक	75 अंक	100 अंक	50 अंक	40 अंक
भारत एवं विश्व का भूगोल	**प्रश्नों की संख्या/ अंक : 2019**	**प्रश्नों की संख्या/ अंक : 2018**	**प्रश्नों की संख्या/ अंक : 2017**	**प्रश्नों की संख्या/ अंक : 2016**	**प्रश्नों की संख्या/ अंक : 2015**	**प्रश्नों की संख्या/ अंक : 2014**	**प्रश्नों की संख्या/ अंक : 2013**
भौतिक भूगोल	2 (25 अंक)	2 (25 अंक)	3 (40 अंक)	1 (12.5 अंक)	2 (25 अंक)	2 (20 अंक)	5 (30 अंक)
प्राकृतिक संसाधनों का वितरण	1 (15 अंक)	2 (25 अंक)	1 (10 अंक)	5 (62.5 अंक)	3 (37.5 अंक)	2 (20 अंक)	2 (20 अंक)
भारत एवं विश्व में उद्योगों को स्थापित करने वाले कारक	2 (20 अंक)	2 (25 अंक)	2 (25 अंक)	–	–	3 (30 अंक)	2 (10 अंक)
महत्त्वपूर्ण भू-भौतिक घटनाएँ (भूकंप, सुनामी, ज्वालामुखी इत्यादि)	1 (10 अंक)	–	1 (15 अंक)	1 (12.5 अंक)	–	2 (20 अंक)	2 (10 अंक)
भौगोलिक विशेषताएँ और उनके स्थान	1 (15 अंक)	1 (10 अंक)	1 (10 अंक)	–	–	1 (10 अंक)	–
अंक	85 अंक	85 अंक	100 अंक	87.5 अंक	62.5 अंक	100 अंक	70 अंक
कुल अंक	**250**	**250**	**250**	**250**	**250**	**250**	**250**

सामान्य अध्ययन प्रश्न पत्र-2

भारतीय संविधान एवं शासन व्यवस्था	प्रश्नों की संख्या/ अंक : 2019	प्रश्नों की संख्या/ अंक : 2018	प्रश्नों की संख्या/ अंक : 2017	प्रश्नों की संख्या/ अंक : 2016	प्रश्नों की संख्या/ अंक : 2015	प्रश्नों की संख्या/ अंक : 2014	प्रश्नों की संख्या/ अंक : 2013
भारतीय संविधान (विशेषताएँ प्रावधान), भारतीय संवैधानिक योजना की अन्य देशों से तुलना	2 (25 अंक)	1 (15 अंक)	2 (30 अंक)	3 (37.5 अंक)	2 (25 अंक)	1 (12.5 अंक)	2 (20 अंक)
संघीय ढाँचे से संबंधित विषय एवं स्थानीय शासन	2 (25 अंक)	2 (30 अंक)	1 (10 अंक)	2 (25 अंक)	3 (37.5 अंक)	1 (12.5 अंक)	1 (10 अंक)
विधायिका एवं जनप्रतिनिधित्व अधिनियम	2 (30 अंक)	1 (10 अंक)	2 (25 अंक)	1 (12.5 अंक)	–	1 (12.5 अंक)	1 (10 अंक)
कार्यपालिका	1 (15 अंक)	1 (10 अंक)	–	–	–	2 (25 अंक)	–
न्यायपालिका	–	1 (15 अंक)	1 (10 अंक)	–	1 (12.5 अंक)	1 (12.5 अंक)	–
विभिन्न घटकों के मध्य शक्ति का पृथक्करण	1 (10 अंक)	–	–	–	1 (12.5 अंक)	–	1 (10 अंक)
संवैधानिक पद तथा संवैधानिक विधिक, विनियामक एवं अर्ध-न्यायिक निकाय	1 (10 अंक)	4 (45 अंक)	2 (25 अंक)	2 (25 अंक)	1 (12.5 अंक)	1 (12.5 अंक)	3 (30 अंक)
लोकतंत्र में सिविल सेवा	–	–	1 (15 अंक)	1 (12.5 अंक)	–	1 (12.5 अंक)	–
अंक	115 अंक	125 अंक	115 अंक	112.5 अंक	100 अंक	100 अंक	80 अंक
शासन प्रणाली एवं सामाजिक न्याय	**प्रश्नों की संख्या/ अंक : 2019**	**प्रश्नों की संख्या/ अंक : 2018**	**प्रश्नों की संख्या/ अंक : 2017**	**प्रश्नों की संख्या/ अंक : 2016**	**प्रश्नों की संख्या/ अंक : 2015**	**प्रश्नों की संख्या/ अंक : 2014**	**प्रश्नों की संख्या/ अंक : 2013**
विकास के लिये सरकारी नीतियाँ एवं क्रियान्वयन से संबंधित विषय	2 (30 अंक)	1 (10 अंक)	3 (40 अंक)	–	–	4 (50 अंक)	1 (10 अंक)
गैर-सरकारी संगठन, स्वयं-सहायता समूह एवं विभिन्न समूहों की विकास प्रक्रिया में भूमिका	1 (10 अंक)	–	2 (25 अंक)	1 (12.5 अंक)	3 (37.5 अंक)	1 (12.5 अंक)	2 (20 अंक)
अतिसंवेदनशील वर्गों के लिये चलाई गई कल्याणकारी योजनाएँ	1 (15 अंक)	–	1 (10 अंक)	1 (12.5 अंक)	–	1 (12.5 अंक)	1 (10 अंक)
मानव संसाधन से संबंधित विषय	1 (10 अंक)	2 (25 अंक)	–	2 (25 अंक)	2 (25 अंक)	1 (12.5 अंक)	2 (20 अंक)
गरीबी एवं भूख से संबंधित विषय	1 (10 अंक)	1 (15 अंक)	1 (10 अंक)	–	1 (12.5 अंक)	–	–
शासन प्रणाली से संबंधित विषय, पारदर्शिता, जवाबदेही, ई-गवर्नेंस, सिटिज़न चार्टर	1 (10 अंक)	2 (25 अंक)	–	3 (37.5 अंक)	2 (25 अंक)	–	3 (30 अंक)
अंक	85 अंक	75 अंक	85 अंक	87.5 अंक	100 अंक	87.5 अंक	90 अंक
अंतर्राष्ट्रीय संबंध	**प्रश्नों की संख्या/ अंक : 2019**	**प्रश्नों की संख्या/ अंक : 2018**	**प्रश्नों की संख्या/ अंक : 2017**	**प्रश्नों की संख्या/ अंक : 2016**	**प्रश्नों की संख्या/ अंक : 2015**	**प्रश्नों की संख्या/ अंक : 2014**	**प्रश्नों की संख्या/ अंक : 2013**
भारत एवं इसके पड़ोसी देश	–	2 (20 अंक)	1 (10 अंक)	–	2 (25 अंक)	1 (12.5 अंक)	6 (60 अंक)
द्विपक्षीय, क्षेत्रीय एवं वैश्विक समूह, विकसित और विकासशील देशों की नीतियों का भारत पर प्रभाव, प्रवासी भारतीय	3 (40 अंक)	1 (15 अंक)	2 (30 अंक)	2 (25 अंक)	1 (12.5 अंक)	1 (12.5 अंक)	1 (10 अंक)
महत्त्वपूर्ण अंतर्राष्ट्रीय संस्थान	1 (10 अंक)	1 (15 अंक)	1 (10 अंक)	2 (25 अंक)	1 (12.5 अंक)	3 (37.5 अंक)	1 (10 अंक)
अंक	50 अंक	50 अंक	50 अंक	50 अंक	50 अंक	62.5 अंक	80 अंक
कुल अंक	**250**		**250**	**250**	**250**	**250**	**250**

सामान्य अध्ययन प्रश्न पत्र-3

अर्थव्यवस्था	प्रश्नों की संख्या/ अंक : 2019	प्रश्नों की संख्या/ अंक : 2018	प्रश्नों की संख्या/ अंक : 2017	प्रश्नों की संख्या/ अंक : 2016	प्रश्नों की संख्या/ अंक : 2015	प्रश्नों की संख्या/ अंक : 2014	प्रश्नों की संख्या/ अंक : 2013
भारतीय अर्थव्यवस्था, योजना, संसाधन, विकास, रोज़गार से संबंधित मुद्दे	2 (20 अंक)	2 (30 अंक)	2 (20 अंक)	–	3 (37.5 अंक)	1 (12.5 अंक)	–
समावेशी विकास	1 (15 अंक)	1 (10 अंक)	1 (15 अंक)	2 (25 अंक)	–	1 (12.5 अंक)	1 (10 अंक)
बजट	1 (15 अंक)	1 (10 अंक)	1 (15 अंक)	1 (12.5 अंक)	–	–	3 (30 अंक)
मुख्य फसलें, कृषि उत्पाद का भंडारण, परिवहन, सिंचाई, ई-प्रौद्योगिकी तथा अन्य संबंधित विषय एवं बाधाएँ	4 (45 अंक)	3 (40 अंक)	2 (25 अंक)	2 (25 अंक)	2 (25 अंक)	2 (25 अंक)	–
प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष कृषि सहायता, जन वितरण प्रणाली, खाद्य सुरक्षा	1 (15 अंक)	1 (10 अंक)	1 (15 अंक)	1 (12.5 अंक)	1 (12.5 अंक)	–	2 (20 अंक)
खाद्य प्रसंस्करण एवं संबंधित उद्योग, पशुपालन	1 (15 अंक)	–	1 (10 अंक)	–	2 (25 अंक)	–	1 (10 अंक)
भारत में भूमि सुधार	–	–	–	1 (12.5 अंक)	–	1 (12.5 अंक)	1 (10 अंक)
उदारीकरण का अर्थव्यवस्था पर प्रभाव, औद्योगिक नीति	–	–	1 (15 अंक)	1 (12.5 अंक)	–	1 (12.5 अंक)	1 (10 अंक)
बुनियादी ढाँचा	–	1 (15 अंक)	–	2 (25 अंक)	1 (12.5 अंक)	1 (12.5 अंक)	1 (10 अंक)
निवेश मॉडल	–	–	1 (10 अंक)	1 (12.5 अंक)	1 (12.5 अंक)	2 (25 अंक)	3 (20 अंक)
अंक	125 अंक	115 अंक	125 अंक	137.5 अंक	125 अंक	112.5 अंक	120 अंक
विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी	**प्रश्नों की संख्या/ अंक : 2019**	**प्रश्नों की संख्या/ अंक : 2018**	**प्रश्नों की संख्या/ अंक : 2017**	**प्रश्नों की संख्या/ अंक : 2016**	**प्रश्नों की संख्या/ अंक : 2015**	**प्रश्नों की संख्या/ अंक : 2014**	**प्रश्नों की संख्या/ अंक : 2013**
विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का विकास, अनुप्रयोग, सूचना एवं प्रौद्योगिकी, अंतरिक्ष, रोबोटिक्स इत्यादि, बौद्धिक संपदा से संबंधित विषय	2 (20 अंक)	1 (15 अंक)	1 (10 अंक)	–	3 (37.5 अंक)	1 (12.5 अंक)	6 (45 अंक)
विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी में भारतीयों की उपलब्धियाँ, देशज रूप से प्रौद्योगिकी का विकास	1 (15 अंक)	1 (10 अंक)	2 (25 अंक)	2 (25 अंक)	1 (12.5 अंक)	2 (25 अंक)	–
अंक	35 अंक	25 अंक	35 अंक	25 अंक	50 अंक	37.5 अंक	45 अंक
पर्यावरण	2 (25 अंक)	4 (45 अंक)	2 (25 अंक)	1 (12.5 अंक)	1 (12.5 अंक)	2 (25 अंक)	3 (25 अंक)
आपदा प्रबंधन	2 (25 अंक)	1 (15 अंक)	1 (15 अंक)	2 (25 अंक)	1 (12.5 अंक)	1 (12.5 अंक)	1 (10 अंक)
सुरक्षा	**प्रश्नों की संख्या/ अंक : 2019**	**प्रश्नों की संख्या/ अंक : 2018**	**प्रश्नों की संख्या/ अंक : 2017**	**प्रश्नों की संख्या/ अंक : 2016**	**प्रश्नों की संख्या/ अंक : 2015**	**प्रश्नों की संख्या/ अंक : 2014**	**प्रश्नों की संख्या/ अंक : 2013**
विकास एवं उग्रवाद के बीच संबंध	–	1 (10 अंक)	–	–	1 (12.5 अंक)	–	1 (10 अंक)
आंतरिक सुरक्षा की चुनौतियाँ, साइबर सुरक्षा, धनशोधन	1 (10 अंक)	1 (15 अंक)	2 (25 अंक)	1 (12.5 अंक)	2 (25 अंक)	1 (12.5 अंक)	3 (30 अंक)
सीमावर्ती क्षेत्रों में सुरक्षा चुनौतियाँ, संगठित अपराध एवं आतंकवाद	1 (15 अंक)	2 (25 अंक)	2 (25 अंक)	3 (37.5 अंक)	–	4 (50 अंक)	1 (10 अंक)
सुरक्षा बल और संस्थान तथा उनके अधिदेश	1 (15 अंक)	–	–	–	1 (12.5 अंक)	–	–
अंक	40 अंक	50 अंक	50 अंक	50 अंक	50 अंक	62.5 अंक	50 अंक
कुल अंक	**250**	**250**	**250**	**250**	**250**	**250**	**250**

सामान्य अध्ययन प्रश्न पत्र-4

नीतिशास्त्र, सत्यनिष्ठा और अभिरुचि	प्रश्नों की संख्या/अंक : 2019	प्रश्नों की संख्या/ अंक : 2018	प्रश्नों की संख्या/ अंक : 2017	प्रश्नों की संख्या/ अंक : 2016	प्रश्नों की संख्या/ अंक : 2015	प्रश्नों की संख्या/ अंक : 2014	प्रश्नों की संख्या/ अंक : 2013
नीतिशास्त्र तथा मानवीय सह- संबंध: मानवीय क्रियाकलापों में नीतिशास्त्र का सार, निर्धारक, परिणाम, आयाम, सार्वजनिक एवं निजी संबंधों में नीतिशास्त्र, मूल्य विकसित करने में परिवार समाज व शिक्षण संस्थाएँ	3 (40 अंक)	1 (10 अंक)	3 (30 अंक)	3 (40 अंक)	4 (55 अंक)	4 (40 अंक)	2 (20 अंक)
अभिवृत्ति: सारांश, संरचना, वृत्ति, विचार आचरण में इसका प्रभाव, नैतिक राजनीतिक अभिरुचि, सामाजिक प्रभाव और धारण	1 (10 अंक)	–	1 (10 अंक)	2 (20 अंक)	–	2 (20 अंक)	1 (10 अंक)
भावात्मक समझ: अवधारणा तथा प्रशासन में उपयोग	1 (10 अंक)	–	1 (10 अंक)	1 (10 अंक)	–	1 (10 अंक)	3 (30 अंक)
भारत एवं विश्व के नैतिक विचारक एवं दार्शनिक	3 (30 अंक)	3 (30 अंक)	2 (20 अंक)	4 (40 अंक)	2 (20 अंक)	1 (10 अंक)	3 (30 अंक)
सिविल सेवा के लिये अभिरुचि तथा बुनियादी मूल्य: सत्यनिष्ठा, गैर-तरफदारी, सेवा के प्रति समर्पण, कमज़ोर वर्गों के प्रति समानुभूति	2 (30 अंक)	1 (10 अंक)	3 (40 अंक)	2 (30 अंक)	5 (60 अंक)	4 (50 अंक)	3 (50 अंक)
लोक प्रशासन में लोक/सिविल सेवा मूल्य तथा नीतिशास्त्र, सरकारी एवं निजी संस्थान में नैतिक चिंता एवं दुविधा, उत्तरदायित्व, अंतर्राष्ट्रीय संबंधों एवं निधि व्यवस्था के नैतिक मुद्दे	4 (70 अंक)	8 (110 अंक)	5 (70 अंक)	3 (65 अंक)	4 (70 अंक)	5 (90 अंक)	4 (70 अंक)
शासन व्यवस्था में ईमानदारी, लोक सेवा की अवधारणा, सूचना का अधिकार, नीतिपरक आचार संहिता, पारदर्शिता, कार्य संस्कृति, सेवा प्रदान करने की गुणवत्ता, लोकनिधि, भ्रष्टाचार	5 (60 अंक)	6 (90 अंक)	4 (70 अंक)	3 (45 अंक)	3 (45 अंक)	2 (30 अंक)	2 (40 अंक)
कुल अंक	**250**	**250**	**250**	**250**	**250**	**250**	**250**

(ख) इनमें से प्रत्येक विकल्प का मूल्यांकन कीजिये एवं जिस विकल्प को आप चुनते हैं, उसे चुनने के कारण दीजिये।

(250 शब्द, 20 अंक)

You are the Executive Director of an upcoming InfoTech Company which is making a name for itself in the market.

Mr. A, who is a star performer, is heading the marketing team. In a short period of one year, he has helped in doubling the revenues as well as creating a high brand equity for the Company so much so that you are thinking of promoting him. However, you have been receiving information from many corners about his attitude towards the female colleagues; particularly his habit of making loose comments on women. In addition, he regularly sends indecent SMS's to all the team members including his female colleagues.

One day, late in the evening, Mrs. X, who is one of Mr. A's team members, comes to you visibly disturbed. She complains against the continued misconduct of Mr. A, who has been making undesirable advances towards her and has even tried to touch her inappropriately in his cabin. She tenders her resignation and leaves your office.

(a) What are the options available to you?

(b) Evaluate each of these options and choose the option you would adopt, giving reasons.

उत्तर: उपर्युक्त मामले में एक तरफ कंपनी को लाभ दिलाने वाले कर्मचारी का सवाल है तो दूसरी तरफ महिला सुरक्षा तथा कार्यालय की कार्य-संस्कृति का प्रश्न है। चूँकि श्री 'A' के खिलाफ निरंतर शिकायतें आ रही हैं और एक महिलाकर्मी ने त्यागपत्र भी दे दिया है तो प्रथम दृष्टया आरोप सही लगता है। हालाँकि साथ ही एक राजस्व प्रदाता कर्मचारी पर कठोर कार्रवाई करना भी आसान नहीं होगा। इस संदर्भ में निम्नांकित विकल्प उपलब्ध हैं-

(क) मैं महिलाकर्मी का इस्तीफा स्वीकार कर लूँ तथा उनसे कहूँ कि यदि अधिक समस्या है तो कहीं और काम कर लें।

(ख) मैं इस्तीफा वापस कर दूँ तथा उनसे कहूँ कि मामले को आगे न बढ़ाएँ, इससे कंपनी की साख खराब होगी।

(ग) मैं इस्तीफा वापस कर दूँ तथा उन्हें उचित कार्रवाई का आश्वासन दूँ।

अब उपर्युक्त विकल्पों के प्रति मेरी राय निम्नांकित है-

(i) विकल्प 'क' इस बात पर आधारित है कि किसी भी कीमत पर कंपनी को राजस्व दिलाने वाले कर्मचारी को बाहर नहीं किया जाएगा। यह न केवल अनैतिक विकल्प है, बल्कि श्री 'A' के अपराध को छिपाने वाला भी है। इससे अन्य महिलाकर्मियों में गलत संदेश जाएगा तथा कार्यालय की कार्य-संस्कृति विकृत हो जाएगी। अत: यह विकल्प अपनाने योग्य नहीं है।

(ii) दूसरा विकल्प यद्यपि महिलाकर्मी का त्यागपत्र वापस कर देता है, किंतु यह बात आगे न बढ़ाने की बात कहकर उचित समाधान की बजाय मामले को दबाना चाहता है। साथ ही यदि महिला पुलिस में शिकायत करती है तो कंपनी की साख और भी खराब होगी। फिर कोई कार्रवाई न करने में श्री 'A' तथा ऐसे अन्य कर्मियों का दुस्साहस बढ़ेगा तथा भविष्य में वे और अधिक अभद्रता कर सकते हैं। यह स्थिति और कठिन होगी। अत: दूसरा विकल्प भी अपनाने लायक नहीं है।

(iii) विकल्प 'ग' सबसे संतुलित है। इस विकल्प को अपनाते हुए मैं निम्नांकित रूप से उसे पूरा करूँगा-

सबसे पहले मैं महिलाकर्मी को विश्वास दिलाऊँगा कि उनके साथ कोई अन्याय नहीं होगा। मैं उनसे कहूँगा कि यदि वह चाहें तो लिखित शिकायत करें तथा इस संदर्भ में विशाखा निर्देशों के तहत जाँच समिति बैठा दी जाए अथवा अगर वह उस स्तर तक नहीं जाना चाहती हों तथा मुझसे यह उम्मीद करती हों कि मैं उचित कार्रवाई करूँ तो मैं ऐसा करूँगा। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि कार्रवाई उनकी अपेक्षाओं के अनुरूप हो।

यदि वह लिखित शिकायत करती हैं तो जाँच समिति बैठा दूँगा अन्यथा व्यक्तिगत स्तर से मामले को सुलझाने का प्रयास करूँगा।

सबसे पहले 'A' से बातचीत कर समस्या की वैधता का अनुमान करूँगा। यदि यह सच होता है तो 'A' को समझाऊँगा कि उसकी यह हरकत उसके पूरे भविष्य को समाप्त कर सकती है। उसके मन में यह भी डर पैदा करूँगा कि उसके खिलाफ लिखित शिकायत हुई है तथा जाँच समिति बैठ रही है।

साथ ही उसे मीडिया का भी भय दिखाऊँगा कि अगर बात वहाँ तक पहुँच गई तो वह गंभीर संकट में फँस सकता है।

पर्याप्त दबाव बनाने के बाद में उससे लिखित माफीनामा लूँगा, जिसमें वह अपनी गलती स्वीकार करे तथा भविष्य में ऐसा न करने का वादा करे। यह माफीनामा उस महिलाकर्मी के प्रति संबोधित होगा तथा मैं महिलाकर्मी से कहूँगा कि यदि वह संतुष्ट हैं तो लिखित रूप से इसे स्वीकार करें।

मुझे उम्मीद है कि इस प्रकार समस्या का उचित समाधान किया जा सकेगा।

अब घर बैठे कीजिये आई.ए.एस. की तैयारी क्योंकि हम आ रहे हैं आपके घर

दृष्टि The Vision | drishti

Think IAS Think Drishti

जानकारी के लिये कॉल करें-
9319290700
9319290701
9319290702
या सिर्फ मिस्ड कॉल करें-
8010600300

आई.ए.एस. प्रिलिम्स ऑनलाइन कोर्स
(IAS Prelims Online Course)

प्रिय विद्यार्थियो,

संसाधन की कमी अक्सर हमारी उड़ान को सीमित कर देती है। हममें आगे बढ़ने की तड़प तो खूब होती है किंतु उसे साकार करने वाले साधनों का अभाव हमें मायूस कर देता है। पिछले कुछ समय से देश के विभिन्न हिस्सों से आप जैसे हज़ारों विद्यार्थियों ने हमें इस आशय के संदेश भेजे कि वो सिविल सेवा में जाने की इच्छा तो रखते हैं किंतु इसकी तैयारी के लिये दिल्ली में रहने का भारी-भरकम खर्च उठा पाना उनके लिये संभव नहीं है। साथ ही आपने हमसे यह अपेक्षा भी व्यक्त की कि हम ऐसी कोई व्यवस्था करें जिसमें आप घर-बैठे दृष्टि की कक्षा कार्यक्रम जैसी गुणवत्तापरक क्लास कर पाएँ। आपके इन्हीं निवेदनों को ध्यान में रखते हुए हम अपना पहला 'पेन ड्राइव कोर्स' जारी कर रहे हैं जो आई.ए.एस. प्रिलिम्स के पाठ्यक्रम पर केंद्रित है। इसमें आप सामान्य अध्ययन तथा सीसैट के कोर्स ले सकते हैं। लगभग 2 वर्षों की कठोर मेहनत से तैयार हुआ यह वीडियो कोर्स गुणवत्ता में अच्छे से अच्छे क्लासरूम प्रोग्राम को टक्कर दे सकता है। हमें विश्वास है कि यह कोर्स उस अंतराल को भरने में सफल होगा जो दिल्ली में रहकर तैयारी करने वाले और दिल्ली नहीं आ पाने वाले विद्यार्थियों के बीच बना रहता है। निकट भविष्य में हम IAS मुख्य परीक्षा और विभिन्न राज्यों की PCS परीक्षाओं के लिये भी ऑनलाइन कोर्स शुरू करेंगे।

एडमिशन प्रारंभ

पहले 500 विद्यार्थियों को 20% की विशेष छूट

मोड : पेन ड्राइव

- कक्षाओं की गुणवत्ता को परखने के लिये डेमो वीडियोज़ हमारे यूट्यूब चैनल Drishti IAS की प्लेलिस्ट Online Courses में देखें
- ऑनलाइन कोर्स से जुड़ी हर जानकारी के लिये हमारी वेबसाइट www.drishtiias.com पर FAQs पेज देखें

IAS प्रिलिम्स ऑनलाइन कोर्स की विशेषताएँ

1. 500+ घंटे की सामान्य अध्ययन की कक्षाएँ।
2. 120+ घंटे की सीसैट की कक्षाएँ।
3. प्रत्येक कक्षा को 3 बार देखने की सुविधा ताकि आप रिवीज़न भी कर सकें।
4. कक्षाओं में डिजिटल बोर्ड का इस्तेमाल। इमेज़, वीडियो आदि की मदद से कठिन विषय समझाने की शैली।
5. हर क्लास के अंत में उस टॉपिक से IAS में पूछे गए और अन्य संभावित प्रश्नों का अभ्यास।
6. स्टेट-ऑफ-द-आर्ट कैमरा और साउंड क्वालिटी जो क्लास के अनुभव को एकदम वास्तविक जैसा बनाती है।
7. प्रिलिम्स के ठीक पहले करेंट अफेयर्स की 30 ऑनलाइन कक्षाएँ (निःशुल्क)।
8. ऑनलाइन प्रिलिम्स टेस्ट सीरीज़ (25+5 टेस्ट) की निःशुल्क सुविधा।
9. क्विक बुक सीरीज़ की 8 पुस्तकें निःशुल्क, जिनके अलावा कोई और स्टडी मैटीरियल पढ़ने की ज़रूरत नहीं।
10. इस कोर्स में नामांकन लेने के बाद अगर आप दृष्टि की किसी भी शाखा में सामान्य अध्ययन के फाउंडेशन कोर्स में दाखिला लेते हैं तो आपकी ऑनलाइन कोर्स की फीस की 50% राशि के बराबर छूट दी जाएगी।

दृष्टि आई.ए.एस. (दिल्ली) : 641, प्रथम तल, मॉ. मुखर्जी नगर, दिल्ली-09
☎ 87501 87501

दृष्टि आई.ए.एस. (प्रयागराज) : तासकंद मार्ग, निकट पत्रिका चौराहा, सिविल लाइन्स, प्रयागराज
☎ 8750187501

Think IAS

दृष्टि The Vision

Think Drishti

Quick Book शृंखला की पुस्तकें

NCERT शृंखला की पुस्तकें

विस्तृत जानकारी के लिये कॉल करें 8448485516, 87501-87501, 011-47532596

खंड 2

2016–19 तक आई.ए.एस. (मुख्य परीक्षा) में पूछे गए निबंधों का वर्षानुगत हल

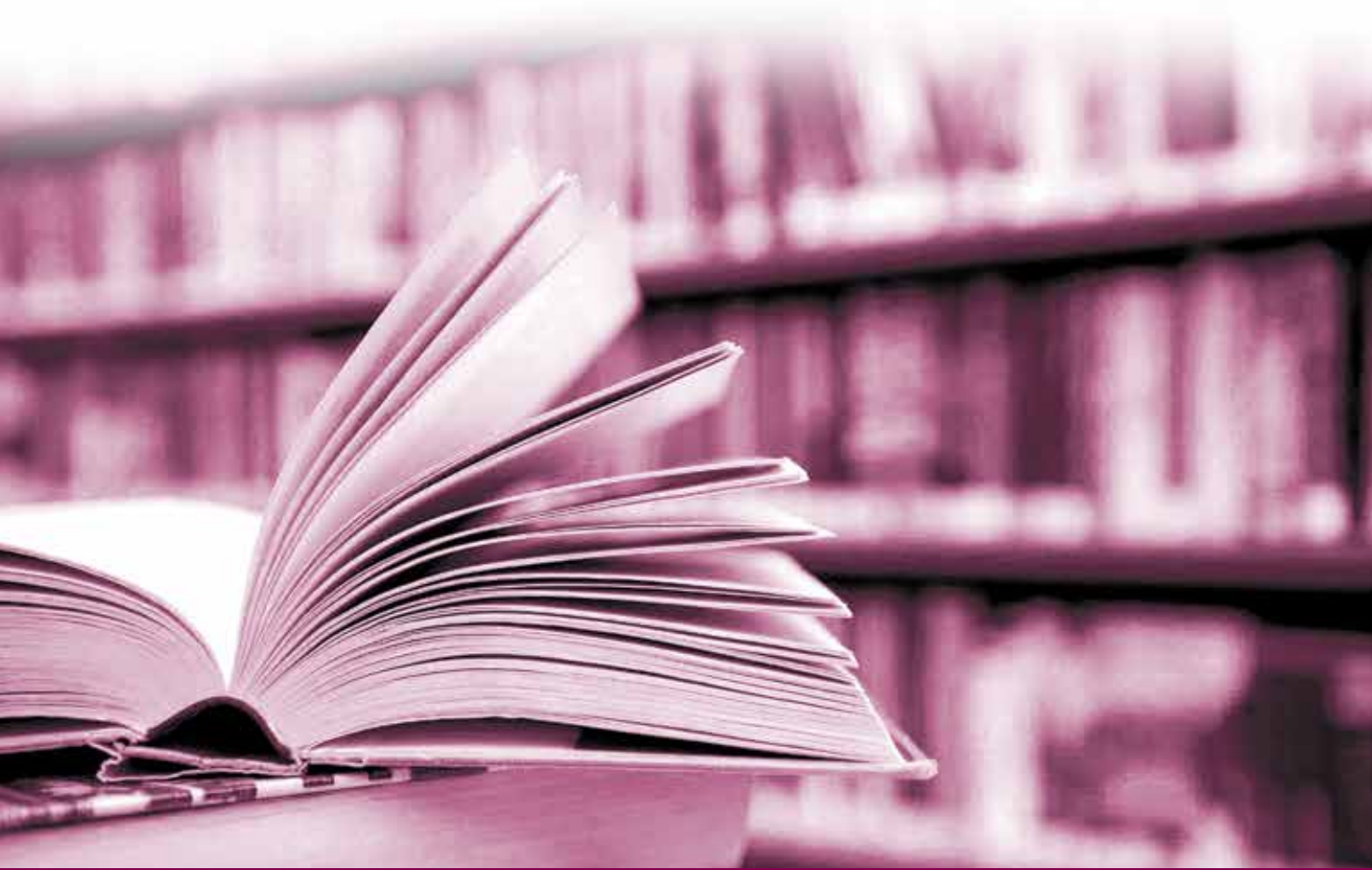

2019 में पूछे गए निबंध

1 विवेक सत्य को खोज निकालता है (Wisdom finds truth)

सूर्य केंद्र में है या पृथ्वी? कौन किसका चक्कर लगाता है? शायद आज किसी व्यक्ति से यह प्रश्न पूछा जाए, तो वह आसानी से इसका उत्तर दे सकता है कि सूर्य केंद्र में है। लेकिन इस सत्य तक पहुँचने की राह वर्तमान में जितनी आसान दिखाई देती है, उतनी है नहीं। मध्यकाल तक इसको लेकर संभवत: सर्वसम्मति रही होगी कि पृथ्वी केंद्र में है तथा सूर्य पृथ्वी का चक्कर लगाता है। अथवा ऐसा भी हो सकता है कि जब चर्च या पादरियों ने बता ही दिया कि पृथ्वी केंद्र में है, तो फिर किसी ने इस पर संदेह व्यक्त करने की हिम्मत नहीं जुटाई होगी। लेकिन कुछ विवेकशील मनुष्यों को इस तथ्य की प्रामाणिकता पर संदेह हुआ होगा और उनके विवेक ने सत्य की खोज के लिये उन्हें प्रेरित किया होगा। अंतत: वे इस सत्य तक पहुँच ही गए कि 'पृथ्वी नहीं, बल्कि सूर्य केंद्र में है तथा पृथ्वी सूर्य का चक्कर लगाती है।' कहा भी जाता है कि 'सत्य कड़वा होता है।' सत्य जब हमारे सामने आता है, तो उसे स्वीकारना आसान नहीं होता। मध्यकाल में चर्च की सत्ता को चुनौती देना कितना कठिन था, इस बात को हम अच्छी तरह जानते हैं। इसके बावजूद कॉपरनिकस, ब्रूनो व गैलीलियो जैसे वैज्ञानिकों ने अपने विवेक के बल पर यह खोज करने का प्रयत्न किया कि वास्तव में सत्य क्या है और समाज के विपरीत अपने मत का प्रतिपादन किया। ब्रूनो को तो सत्य की खोज के लिये ज़िंदा जला दिया गया।

> **"उदाहरणस्वरूप, 'नवजागरण' के दौर में ईश्वरचंद्र विद्यासागर, राजा राममोहन राय, ज्योतिबा फुले इत्यादि समाज-सुधारक अपने विवेक से इस सत्य तक पहुँचे कि सती प्रथा, बाल विवाह, छुआछूत जैसी प्रथाएँ भारतीय समाज का सार्वकालिक सत्य नहीं हैं और न ही ये रूढ़िवादी परंपराएँ अन्य समाज में मौजूद हैं। अत: भारतीय समाज में व्याप्त इन रूढ़िगत प्रथाओं को दूर करने का इन्होंने आह्वान किया। दूसरी ओर ब्रिटिश शासन 'श्वेत नस्ल भार का सिद्धांत' के तहत भारतीयों पर अपने शासन को वैध बताता रहा। भारतीय बुद्धिजीवियों के विवेक ने इस 'मत' या असत्य को सिरे से नकार दिया और वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि इस सिद्धांत के माध्यम से सत्य को विकृत करके भारतीयों का अत्यधिक शोषण किया जा रहा है तथा उनके धन को लूटकर ब्रिटेन पहुँचाया जा रहा है।"**

इसी क्रम में निबंध के शीर्षक के अनुरूप एक प्रचलित कहानी की चर्चा करना भी महत्त्वपूर्ण हो जाता है। एक बार एक राजा के दरबार में दो महिलाएँ आईं, जो किसी बच्चे को लेकर अपना-अपना दावा प्रस्तुत कर रही थीं। इस परिस्थिति में राजा के लिये न्याय करना मुश्किल हो गया। आधुनिक काल के समान उस समय डीएनए जैसी टेक्नोलॉजी भी नहीं थी, जिससे समस्या का उचित समाधान किया जा सके तथा न्याय हो सके। अत: राजा ने अपने विवेक का प्रयोग किया और सत्य को खोजने का प्रयत्न किया। राजा ने क्रोधित होकर कहा कि तलवार से इस बच्चे के दो हिस्से कर दिये जाएँ एवं दोनों महिलाओं को एक-एक हिस्सा दे दिया जाए। राजा के इतना कहते ही उनमें से एक महिला ने तुरंत कहा- "महाराज, आप बच्चे को इस महिला को दे दीजिये।" उस महिला के मुख से ऐसी बात सुनकर राजा समझ गया कि बच्चा किसका है और सत्य सामने आ गया।

उपर्युक्त संदर्भों के आधार पर प्रथम दृष्टया तो यही प्रतीत होता है कि विवेक सत्य को खोज निकालता है। इससे पूर्व, सर्वप्रथम यह जानना महत्त्वपूर्ण है कि क्या ज्ञान (Knowledge) और विवेक (Wisdom) समानार्थी हैं या इनमें अंतर भी विद्यमान हैं। सामान्यत: लोग ज्ञान और विवेक को समानार्थी ही मानते हैं, परंतु दोनों में मौलिक असमानता है। ब्रिटिश निबंधकार, दार्शनिक और इतिहासकार 'बर्ट्रेंड रसेल' अपने निबंध 'Knowledge and Wisdom' में इनके मध्य अंतर की विस्तृत चर्चा करते हैं। रसेल Knowledge अर्थात् 'ज्ञान' को डाटा या सूचनाओं के संग्रहण अथवा किसी वस्तु के बारे में प्राप्त जानकारी के रूप में परिभाषित करते हैं, जबकि Wisdom अर्थात् 'विवेक' अपने अनुभवों व परिश्रम से इन सूचनाओं का व्यावहारिक अनुप्रयोग करने से संबंधित है। विशेष बात यह भी है कि इस व्यावहारिक अनुप्रयोग में नैतिक मूल्य अनिवार्यत: शामिल होते हैं। इसके अतिरिक्त विवेक में बुद्धि-पक्ष के साथ-साथ भावनाओं का भी संतुलित सामंजस्य होता है। स्पष्ट है कि विवेक, ज्ञान से श्रेष्ठ है। विवेकहीन ज्ञान हानिकारक हो सकता है। इसे एक उदाहरण के माध्यम से भली भाँति समझ सकते हैं- किसी व्यक्ति को परमाणुओं और अणुओं का ज्ञान है, किंतु अगर उसमें विवेक नहीं है, तो हो सकता है कि वह अपने ज्ञान का उपयोग मानव सभ्यता के विकास में न करके, उसके विध्वंस (परमाणु हथियारों के द्वारा) में करे। दूसरी तरफ, अगर व्यक्ति में ज्ञान है और साथ ही विवेक भी है, तो वह अपने ज्ञान का उपयोग नए-नए आविष्कार के लिये करेगा, जो निश्चित रूप से मानव सभ्यता के विरुद्ध न होकर उसकी प्रगति में ही योग देगा।

इसलिये प्राचीनकाल से ही भारतीय एवं पश्चिमी दोनों परंपराओं में मनुष्य में 'विवेक-सद्गुण' के विकास पर अत्यधिक बल दिया जाता है, फिर चाहे वह 'ओल्ड टेस्टामेंट' हो अथवा भारतीय धर्मग्रंथ। ग्रीक नीतिशास्त्र में सुकरात, प्लेटो एवं अरस्तू तीनों ने नैतिकता के लिये सद्गुणों के विकास को महत्त्व दिया है। प्लेटो की पुस्तक 'द रिपब्लिक' में वर्णित 'दार्शनिक राजा' विवेक व ज्ञान से युक्त है तो 'अरस्तू' ने बौद्धिक सद्गुण में 'विवेक' को प्रमुख माना है, जो सुकरात के ज्ञान-सद्गुण के नज़दीक है। इसी संदर्भ में सुकरात का प्रसिद्ध कथन भी है- "An unexamined life is not worth living."

> **परंतु विवेक, किसी अन्य व्यक्ति या मत के द्वारा नियंत्रित नहीं होता अपितु निष्पक्षतापूर्वक सत्य तक पहुँच जाता है कि वास्तव में सुबह है या रात? इसलिये प्राचीनकाल से ही विवेक को प्रमुख 'सद्गुण' की श्रेणी में रखा जाता है। वर्तमान सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के युग में, जब सूचनाओं का भ्रमजाल है और 'फेक न्यूज़' का प्रचलन भी काफी अधिक है, कौन-सी घटना सत्य है और कौन-सी असत्य, इस बात की पहचान कर पाना अत्यधिक कठिन हो गया है। इन परिस्थितियों में विवेक की भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण हो जाती है, वही सत्य को खोज सकता है।**

अब सवाल यह उठता है कि विवेक, सत्य को कैसे खोज निकालता है? सत्य की खोज के लिये क्या विवेक ही रास्ता उपलब्ध कराता है? उल्लेखनीय है कि विवेक अनुभव, ज्ञान, नैतिकता से संपृक्त होने के कारण निर्णय की गुणवत्ता को बढ़ा देता है। विवेकशील मनुष्य दूसरों की बातों या अन्य व्यक्तियों के द्वारा बनाए हुए रास्ते का अंधानुकरण नहीं करता है बल्कि अपनी तार्किकता व स्वतंत्र चिंतन से उसे टटोलने का प्रयत्न करता है। जब उसका विवेक इस बात को स्वीकार कर लेता है कि उपर्युक्त बात में सटीकता है, तभी वह उस बात को स्वीकार करता है या उस रास्ते पर चलता है।

उदाहरणस्वरूप, 'नवजागरण' के दौर में ईश्वरचंद्र विद्यासागर, राजा राममोहन राय, ज्योतिबा फुले इत्यादि समाज-सुधारक अपने विवेक से इस सत्य तक पहुँचे कि सती प्रथा, बाल विवाह, छुआछूत जैसी प्रथाएँ भारतीय समाज का सार्वकालिक सत्य नहीं हैं और न ही ये रूढ़िवादी परंपराएँ अन्य समाज में मौजूद हैं। अत: भारतीय समाज में व्याप्त इन रूढ़िगत प्रथाओं को दूर करने का इन्होंने आह्वान किया। दूसरी ओर ब्रिटिश शासन 'श्वेत नस्ल भार का सिद्धांत' के तहत भारतीयों पर अपने शासन को वैध बताता रहा। भारतीय बुद्धिजीवियों के विवेक ने इस 'मत' या असत्य को सिरे से नकार दिया और वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि इस सिद्धांत के माध्यम से सत्य को विकृत करके भारतीयों का अत्यधिक शोषण किया जा रहा है तथा उनके धन को लूटकर ब्रिटेन पहुँचाया जा रहा है।

विचारणीय है कि विवेक व्यक्ति के संदेह को दूर करता है। जब तक व्यक्ति में संदेह व्याप्त रहेगा, वह सत्य तक नहीं पहुँच सकता। जिस कारण से व्यक्ति में संदेहात्मक मनोवृत्ति विकसित हो रही है, विवेक उसकी जड़ तक पहुँचकर उसे समाप्त कर देता है। हालाँकि, इससे सहमत हुआ जा सकता है कि पूर्व में जिन बातों को लेकर धारणा थी कि उपर्युक्त मत पूर्णत: सत्य है; अगर लोगों के मन में उस तथ्य की सटीकता

3 व्यक्ति के लिये जो सर्वश्रेष्ठ है, वह आवश्यक नहीं कि समाज के लिये भी हो (Best for an individual is not necessarily best for the society)

महान विचारक रूसो ने कहा था, "व्यक्ति स्वतंत्र पैदा होता है पर वह सर्वत्र बेड़ियों में जकड़ा हुआ होता है।" अब प्रश्न उठता है कि ये कौन-सी बेड़ियाँ हैं जिन्हें मनुष्य साथ लेकर आता है? ये कैसे बंधन हैं जो इस सामाजिक पशु को यावज्जन्म बांधे रखते हैं? दरअसल, ये संबंधों के बंधन हैं। वैसे संबंधों के बंधन जिनसे समाज स्वयं बना है और जिन्हें वह 'संविदा' की तरह हम पर भी आरोपित करता है। इस तरह समाज में व्यक्ति का स्थान दीवार की ईंट जैसा हो जाता है जो स्वयं दीवार की तुलना में चाहे कितनी भी छोटी हो, पर उसकी एक तय जगह है, जहाँ से उसके हिलने पर पूरी दीवार की ईंटें प्रभावित होंगी। संक्षेप में कहें तो समाज हमें, हम जैसों के बीच महत्त्वपूर्ण बनाता है। ऐसे में समझना कठिन नहीं है कि व्यक्ति की बदलती जगह से प्रभावित हो जाने वाला समाज व्यक्ति के अंदर चल रहे बदलावों से भी भरपूर प्रभावित होगा। कुल मिलाकर प्रतीत होता है कि समाज और व्यक्ति के हित परस्पर जुड़े हुए हैं; जो व्यक्ति के लिये सर्वश्रेष्ठ होगा वही समाज के लिये भी होगा। इस प्रतीति के प्रामाणिक परीक्षण के लिये सबसे पहले हमें यह जानना होगा कि व्यक्ति के लिये सर्वश्रेष्ठ क्या है? इस संदर्भ में 'टू हैव ऑर टू बी' पुस्तक के माध्यम से अभिव्यक्त लेखक 'एरिक फ्रॉम' की चिंता का उल्लेख करना ज़रूरी हो जाता है। एरिक फ्रॉम की यह चिंता कि व्यक्ति के लिये सर्वश्रेष्ठ क्या है, के प्रश्न पर केंद्रित है। क्या बहुत सारी जीवनोपयोगी वस्तुओं का भंडारण और धन का संग्रहण ही व्यक्ति के लिये सर्वश्रेष्ठ है या व्यक्ति के लिये सर्वश्रेष्ठ है उस रास्ते को समझ पाना, जिससे उसका जीवन सुखमय रहे और आनंद से बीते? इन दोनों प्रश्नों का विश्लेषण ही हमें हमारे लक्ष्य तक ले जाएगा।

सर्वप्रथम हमें यह समझना होगा कि शरीर की मूलभूत ज़रूरतें पूरी हो जाने के बाद प्रसन्नता का सीधा संबंध हमारी संतुष्टि से होता है और प्रसन्न होने के लिये ज़रूरी संतुष्टि हमें हमारे अंदर ही मिल सकती है। इस संदर्भ में मशहूर गायक 'बॉब मार्ले' का कथन प्रासंगिक हो जाता है, "पैसा हमें कभी संतुष्ट नहीं कर सकता, क्योंकि वह दरअसल एक संख्या है और संख्याएँ अनंत होती हैं।" सही भी है कि संपत्ति या संसाधन साधन मात्र हैं, साध्य तो बस हमारी प्रसन्नता है। और गहराई से विचार करने पर हम पाते हैं कि दरअसल प्रसन्नता भी एक माध्यम ही है जिसके द्वारा हम संतुष्टि को साधते हैं। ज़ाहिर है 'टू हैव ऑर टू बी' की चिंता के अंतिम चरण में 'टू बी' की विजय होनी चाहिये लेकिन फिर भी समाज में कुछ वर्ग ऐसे ज़रूर रहते हैं जो संसाधनों के भंडारण को ही असली सुख समझते हैं और उसी में संतुष्टि पाते हैं। ऐसे में ये लोग व्यक्ति और समाज के साझे हितों के सम्मुख अपवाद की तरह खड़े होते हैं। अपरिग्रह के मूल्य की अवहेलना करने वाले इन्हीं लोगों की वजह से यह धारणा निर्मित होती है कि व्यक्ति के लिये जो सर्वश्रेष्ठ है, वह आवश्यक नहीं कि समाज के लिये भी हो।

दूसरी तरफ यदि विशेषाधिकारों पर विचार करें तो ये ऐसे विशिष्ट लाभ, अधिकार या प्रदान किये प्रतिरक्षा उपकरण होते हैं, जो केवल कुछ व्यक्तियों एवं समूहों को प्राप्त होते हैं। विशेषाधिकार अधिकार से अलग होते हैं, जैसे- शिक्षा प्रत्येक मानव का एक मौलिक अधिकार है जबकि कार पर लाल बत्ती लगाकर चलना कुछ लोगों का विशेषाधिकार होता है। विशेषाधिकार अपनी मूल प्रकृति में ही असमानता पर आधारित होते हैं, पर व्यक्ति विशेष और उसके 'सर्वश्रेष्ठ' से सुसंगत होते हैं।

इस संदर्भ में पंडित नेहरू का कथन है, "असफलता केवल तभी आती है, जब हम अपने आदर्श, उद्देश्य और सिद्धांतों को भूल जाते हैं। यह बात छद्म लोकतांत्रिक समाज या वर्तमान से कुछ शताब्दी पहले के समाजों में व्याप्त विशेषाधिकारों के संदर्भ में स्पष्टत: देखी जा सकती है। दुनिया में स्वतंत्रता, समानता, न्याय तथा बंधुत्व की स्थापना के लिये हुई अमेरिकी क्रांति, फ्राँसीसी क्रांति, रूसी क्रांति या भारत का स्वतंत्रता आंदोलन इन विशेषाधिकारों की प्रतिक्रिया में ही फलीभूत हुए हैं।"

पूरी दुनिया पर शासन करने वाली ब्रिटिश सत्ता स्वयं को लोकतांत्रिक मूल्यों का वाहक कहती थी, किंतु वास्तव में उसने अपने लोकतांत्रिक सिद्धांतों के ऊपर अपने विशेषाधिकारों को प्रभावी बनाया, जिसका परिणाम यह हुआ कि न अस्त होने वाली ब्रिटिश सत्ता का सूर्य अस्त हो गया।

निश्चित रूप से विशेषाधिकारों को सिद्धांतों से ज़्यादा महत्त्व देने की प्रवृत्ति ने पूरी दुनिया के समाजों को उनके आदर्शों तथा समावेशी विकास के लक्ष्य से दूर किया है और संपूर्ण विश्व में 'सार्थक नेतृत्व का संकट' उत्पन्न किया है। इसने वैश्विक चुनौतियों, जैसे- जलवायु परिवर्तन, साइबर असुरक्षा, आतंकवाद तथा शरणार्थी संकट जैसी विषम परिस्थितियों को भयावह बनाया है। इन चुनौतियों का तार्किक समाधान सत्यनिष्ठा तथा ईमानदारी जैसे सिद्धांतों को धारण करने वाला नेतृत्व ही कर सकता है।

संसाधनों की तरह ही विशेषाधिकार भी एक व्यक्ति के 'सर्वश्रेष्ठ' से भले ही सुसंगत हो, पर वह पूरे समाज के सर्वश्रेष्ठ से कभी सुसंगत नहीं हो सकता। ऐसे में ज़रूरी हो जाता है कि हम इस बात को समझें और आत्मसात् करें- "ऐसा कुछ भी, जो छत्ते के लिये हानिकारक है, मधुमक्खी के लिये कभी फायदेमंद नहीं हो सकता।" हमारा समाज अगर छत्ता है, तो हम मधुमक्खियाँ हैं और समझना हमें यह है कि समाज का हित व्यक्ति के हित से अलग नहीं है। समाज का हित पूरी मानव जाति के हित को साधने का एक सीधा और सपाट रास्ता है, बशर्ते इस पर चलने के लिये हमें कुछ व्यक्तिगत हितों की बलि देनी ही होगी।

4 स्वीकारोक्ति का साहस एवं सुधार करने की निष्ठा सफलता के दो मंत्र हैं
(Courage to accept and dedication to improve are two keys to success)

व्यक्ति के जीवन में विशेष घटना अथवा परिचर्चा संभवत: स्मृतियों में स्थायी स्थान बना लेती है। इसी प्रकार की एक परिचर्चा मेरे व्यक्तिगत जीवन से जुड़ी हुई है। एक समय, किसी क्षेत्र में अत्यधिक प्रयत्न करने के बावजूद मेरे प्रदर्शन में सुधार नहीं हो पा रहा था, साथ ही मैं अपनी असफलता को भी स्वीकार नहीं कर पा रहा था। किंतु, सबसे बढ़कर स्वयं की गलतियों की भी पहचान नहीं हो पा रही थी। दूसरे शब्दों में कहें, तो जो गलतियाँ मुझसे हो रही थीं, उनको स्वीकारने का साहस मेरे अंदर नहीं था और यह महसूस होने लगा था कि शायद अब मुझे सफलता कभी प्राप्त होगी ही नहीं। इसी क्रम में जब मैं अपने मित्र से मिला, तो इस संबंध में उससे चर्चा की। मेरे प्रश्नों का जब उसने तार्किक जवाब दिया, तो नि:संदेह वह क्षण मेरे जीवन की बेहतर स्मृतियों में शामिल हो गया। उसका जवाब था- डियर फ्रेंड, तुम अपनी गलतियों की पहचान नहीं कर पा रहे हो। अधिक कठोर शब्दों में कहा जाए, तो तुममें अपनी अक्षमताओं व गलतियों को स्वीकार करने का साहस नहीं है। इसलिये उन गलतियों को दूर करने की निष्ठा उत्पन्न नहीं हो पा रही है अर्थात् स्वयं को अभ्यास के ज़रिये निरंतर सुधार लाकर बेहतर नहीं बना पा रहे हो। जवाब को सुनकर उसकी प्रासंगिकता को टटोलने का प्रयास किया, तो यह पूर्णत: सत्य दृष्टिगोचर हुआ।

इस घटना से पूर्व वास्तव में मैंने कभी उपर्युक्त प्रश्न पर विचार ही नहीं किया था कि विश्व में जितने भी सफल व्यक्ति हुए हैं, उनकी सफलता के दो मंत्र- स्वीकारोक्ति का साहस एवं सुधार करने की निष्ठा ही हैं। भारतीय क्रिकेट टीम के सफलतम कप्तान 'महेंद्र सिंह धोनी' का जब अनेक प्रयासों के बावजूद प्रारंभ में राष्ट्रीय क्रिकेट टीम में स्थान सुनिश्चित नहीं हो पाता है, तो वे अपनी गलतियों को स्वीकारते हुए उनमें निरंतर सुधार लाने का प्रयत्न करते हैं अर्थात् धोनी में सुधार की निष्ठा थी। वैसे भी 'एमएस धोनी: द अनटोल्ड स्टोरी' का एक दृश्य, जो शायद काल्पनिक हो सकता है लेकिन उनकी सफलता के मंत्र को भली भाँति रेखांकित करता है, जब क्रिकेट टीम में सेलेक्शन न होने पर वे असफलता को स्वीकारते हुए मित्रों को पार्टी देते हैं। इसी तरह 'थॉमस अल्वा एडीसन' की असफलता से सफलता की यात्रा बड़ी रोचक है। उन्हें भी अपने प्रयासों में अनेक बार असफलता मिली, परंतु उन्होंने इन असफलताओं से पलायन का रास्ता चुनने की बजाय अपनी गलतियों व असफलताओं को सहर्ष स्वीकारा। उनमें सुधार लाने का प्रतिदिन प्रयत्न किया। एडीसन में सुधार करने की निष्ठा थी, तभी तो 'बल्ब' के आविष्कार में सैंकड़ों बार असफल होने के बावजूद उन्होंने अपनी सफलता से संपूर्ण विश्व को रौशन कर दिया। एडीसन का निम्नलिखित कथन उनकी सफलता के दो मंत्र- स्वीकारोक्ति का साहस एवं सुधार करने की निष्ठा को ही बतलाते हैं– "I have not failed, I have just found 10,000 ways that won't work" अर्थात् मैं असफल नहीं हुआ, बल्कि मैंने उन 10,000 तरीकों की खोज कर ली है, जो सफल नहीं हो सकते।

अब प्रश्न यह उठता है कि वैसे भी 'साहस' व्यक्ति की सफलता का मंत्र होता ही है, तथापि स्वीकारोक्ति का साहस 'सर्वोत्तम साहस' की श्रेणी में सम्मिलित क्यों होता है? वे कौन-से कारक हैं जिनसे स्वीकारोक्ति का साहस व्यक्ति में विकसित नहीं हो पाता है? वस्तुत: स्वयं को 'सर्वश्रेष्ठ' समझने की मनुष्य की मनोवृत्ति स्वीकारोक्ति के साहस की राह में सर्वाधिक कठिन चुनौती है। इस कारण हमारे अंदर जो गलतियाँ होती हैं, उन गलतियों को हम स्वीकार करने का साहस नहीं जुटा पाते हैं। इसका स्वाभाविक परिणाम यह होता है कि हम उन गलतियों और असफलताओं को सफलता में परिवर्तित नहीं कर पाते हैं, क्योंकि सफलता की प्राप्ति तभी होगी जब हम अपनी गलतियों को स्वीकार करते हुए उनमें सुधार की निष्ठा रखेंगे। इसलिये गौतम बुद्ध भी कहते हैं– "इस संसार में देखने के लिये बहुत-से खूबसूरत स्थान हैं, पर सबसे खूबसूरत है बंद आँखों से अपनी ओर देखना।" कबीर का भी मत है कि दूसरे व्यक्तियों की आलोचना करने की बजाय हमें स्वयं के मूल्यांकन पर ध्यान केंद्रित करना चाहिये। ईमानदारीपूर्वक अपनी आलोचना करना बहुत बड़ी बात है। हम दूसरों व्यक्तियों में तो अनेक दोषों की शृंखला आसानी से निर्मित कर सकते हैं, परंतु स्वयं के भीतर का अवलोकन नहीं कर पाते। इससे आगे बढ़कर व्यक्ति को अगर स्वयं में कोई बुराई नज़र आती भी है, तो वह उसको स्वीकारता नहीं है, अपितु उससे पलायन का रास्ता चुनता है। जब हम स्वयं का सूक्ष्म विश्लेषण कर लेंगे, तो सर्वोत्तम साहस अर्थात् स्वीकारोक्ति के साहस को अपनाना अपेक्षाकृत सरल होगा। इसी कारण कबीर कहते हैं-

"बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय।
जो दिल खोजा आपना, मुझसे बुरा न कोय।।'

अत: उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि स्वीकारोक्ति का साहस वास्तव में सर्वोत्तम साहस है। अहं भावना, स्वयं के अंदर न देख पाने की अक्षमता इत्यादि कारणों से स्वीकारोक्ति का साहस विकसित नहीं हो पाता, जिसके चलते व्यक्ति को अनेक प्रकार के नकारात्मक परिणामों से जूझना पड़ता है। इसका सर्वप्रमुख नकारात्मक परिणाम यह होता है कि व्यक्ति के अहं केंद्रित होने से उसके पतन का मार्ग खुल जाता है। विश्व में हमें अनेक ऐसे व्यक्तियों के उदाहरण देखने को मिलते हैं, जिनमें स्वीकारोक्ति का साहस एवं सुधार करने की निष्ठा नहीं थी और इस कारण

7 पक्षपातपूर्ण मीडिया भारत के लोकतंत्र के समक्ष एक वास्तविक खतरा है
(Biased media is a real threat to Indian democracy)

"हत्या हुई सनसनी बनी,
बलात्कार हुआ सनसनी बनी,
चोरी हुई सनसनी बनी,
डकैती हुई सनसनी बनी,
हत्यारा कोई खास था,
आज भी अखबार छपा, पर
न खबर बनी न सनसनी!"

युवा कवि अशोक कुमार की यह कविता हमें मीडिया व लोकतंत्र के संबंधों पर सोचने के लिये मजबूर करती है। मीडिया को लोकतंत्र का चौथा स्तंभ कहा जाता है, और यह मान्यता है कि विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका जनता के प्रति अपनी जवाबदेही न भूल जाए, यह सुनिश्चित करना मीडिया का काम है। सच्चा लोकतंत्र वह होता है जहाँ जनता को अपनी सरकार के निर्णयों की समुचित जानकारी हो तथा उन निर्णयों से होने वाले लाभ-हानियों की गहरी समझ हो ताकि वह लोकतंत्र की प्रक्रियाओं में सार्थक हिस्सेदारी निभा सके। वर्तमान में ऐसा दिखता है कि मीडिया सिर्फ एक उद्योग बनकर रह गया है जो अपने व्यावसायिक नैतिक दायित्वों से दूर है। यह सरकारों, अमीरों और हर तरह के अभिजन वर्ग का हथियार बन चुका है। जिसकी भूमिका जनता को सच बताने की थी, सरकारों की खबर लेने की थी, समाज को कदम-कदम पर आईना दिखाने की थी, वह मीडिया वैश्विक पूंजीवाद के इस दौर में कब सत्ता व धनिकों का गुलाम बन गया, पता ही नहीं चला।

भारत में लोकतंत्र के समक्ष नि:संदेह कई खतरे मौजूद हैं, लेकिन लोकतंत्र की मूल भावनाओं और दर्शन पर जो खतरा सीधा आघात करता है, वह है- मीडिया का अपनी ज़िम्मेदारियों से विमुख होना। इस मीडिया में अखबार-पत्रिकाएँ भी शामिल हैं, टेलीविज़न-रेडियो भी और सोशल मीडिया एवं फिल्में भी। यदि हम इन सबमें दिखाई जाने वाली सामग्री का सूक्ष्म विश्लेषण करेंगे तो पाएंगे कि मीडिया जाने-अनजाने में कई स्तरों पर पक्षपात करता है और उसका हर पक्षपात हमारे लोकतंत्र को पीछे धकेलता है।

> **"ध्यातव्य है कि पक्षपात का अर्थ केवल अंध समर्थन नहीं होता, अंधविरोध भी पक्षपात का ही एक रूप है। अंधअविश्वास भी उतना ही बुरा होता है, जितना बुरा अंधविश्वास। इसलिये यदि कुछ चैनल 24 घंटे सरकार का गुणगान करते हैं और कुछ को सरकार के हर कार्य में साज़िश ही नज़र आती है तो यह दोनों बराबर चिंता की बातें हैं। और यह सिर्फ भारत की समस्या नहीं है, मीडिया वर्चस्व के इस युग में यह समस्या दुनिया के हर लोकतंत्र की है। पिछले अमेरिकी राष्ट्रपति चुनाव में ट्रंप व हिलेरी क्लिंटन के मुकाबले में मीडिया ने कितनी भूमिका निभाई यह किसी से छिपा नहीं है। हाल ही में चीन में पत्रकारों को लाइसेंस देने के लिये एक परीक्षा अनिवार्य की गई है जिसमे राष्ट्रपति शी-जिनपिंग के जीवन व दर्शन से जुड़े प्रश्न पूछे जाएंगे।"**

सबसे पहले लोकतंत्र के उस पक्ष को देखते हैं जो राजनीतिक है, जिसका संबंध चुनावों की प्रक्रिया से है। लोकतंत्र में नेताओं और दलों की मजबूरी है कि उन्हें सत्ता में आने के लिये जनता का प्रिय बनना होता है। बड़ी आबादी वाले भू-भाग में कोई नेता सभी से कैसे संपर्क करे? इसी यक्ष प्रश्न का उत्तर है- मीडिया। मीडिया नेताओं के भाषणों की प्रस्तुति करके, उनके इंटरव्यू आयोजित करके जनता के सामने एक छवि लाता

8 कृत्रिम बुद्धि का उत्थान : भविष्य में बेरोज़गारी का खतरा अथवा पुनर्कौशल और उच्चकौशल के माध्यम से बेहतर रोज़गार के सृजन का अवसर
(Rise of Artificial Intelligence : The threat of jobless future or better job opportunities through reskilling and upskilling)

1960 के दशक में जब नोबेल पुरस्कार विजेता 'मिल्टन फ्रॉयडमैन' भारत और अन्य एशियाई देशों के दौरे पर थे, तब की एक घटना अत्यंत रोचक है। मिल्टन जब भारत में नहर खुदवाने के दौरान मज़दूरों के हाथों में फावड़े जैसे औज़ार देख रहे थे, तो इसी क्रम में उन्होंने निर्माण गतिविधियों का प्रबंधन करने वाले एक अधिकारी से पूछा- "आप, इन निर्माण गतिविधियों में प्रौद्योगिकी का उपयोग क्यों नहीं करते? इससे कार्य जल्दी संपन्न हो जाएगा।" इस प्रश्न का उत्तर वास्तव में आश्चर्यचकित कर देने वाला है। प्रबंधन अधिकारी कहता है- "आपको लगता है कि इन मज़दूरों को फावड़ा देकर हम निर्माण गतिविधियों में वृद्धि और आधारभूत संरचना का विकास कर रहे हैं? ऐसा नहीं है, बल्कि हम इन बेरोज़गार मज़दूरों को रोज़गार दे रहे हैं।" इसके प्रत्युत्तर में फ्रॉयडमैन कहते हैं- "ओह! तब आप इन लोगों को फावड़ा क्यों देते हैं, सभी को 'चम्मच' दे दीजिये, जिससे कार्य की समाप्ति में और अधिक दिन लगेंगे।" वस्तुत: यहाँ रोज़गार तो मिल रहा है किंतु क्या कार्य मानवीय गरिमा के अनुकूल है? आधुनिक समय में हम जिन मानवोचित कार्यों की बात करते हैं, जिनसे मनुष्य की रचनात्मकता व जीवन उत्कर्ष में वृद्धि होती है, वे सभी प्रतिमान यहाँ अनुपस्थित हैं।

> **"सरल शब्दों में कहें तो कृत्रिम बुद्धि, कंप्यूटर जैसी मशीनों की ऐसे कार्य करने की क्षमता है, जिन्हें सामान्यत: किये जाने के लिये मानव मस्तिष्क की ज़रूरत होती है। कृत्रिम बुद्धि के जनक 'जॉन मैकार्थी' के अनुसार, "कृत्रिम बुद्धि मशीनों, विशेष रूप से कंप्यूटर प्रोग्रामों, के निर्माण की तकनीक है।" वर्तमान में हम प्रौद्योगिकीयुक्त वातावरण में जीवन यापन करते हैं। आज बिना प्रौद्योगिकी के मानव अपने जीवन की कल्पना भी नहीं कर सकता है। इन प्रौद्योगिकियों में से 'कृत्रिम बुद्धि' अपेक्षाकृत अधिक तीव्रता से क्रांतिकारी परिवर्तन लाने का सामर्थ्य रखती है। 'वर्ल्ड इकॉनमिक फोरम' ने कृत्रिम बुद्धि को 'चतुर्थ औद्योगिक क्रांति' के रूप में संदर्भित किया है, जिसने हमारे जीवनयापन, कार्य करने और जीवन के प्रत्येक पक्ष में तीव्र परिवर्तन कर दिया है। शायद ही जीवन का कोई ऐसा पक्ष शेष रहा हो, जहाँ कृत्रिम बुद्धि की मौजूदगी न हो।"**

वस्तुत: प्रौद्योगिकी की मानव सभ्यता की भौतिक उन्नति के उत्कर्ष और उसे सुख-सुविधाओं से संपृक्त करने में अद्वितीय भूमिका रही है। इसलिये कुछ विद्वान तो मानव सभ्यता के इतिहास को ही दो भागों में बाँटकर देखते हैं- प्रथम, प्रौद्योगिकी के आगमन से पूर्व की मानव सभ्यता और द्वितीय, प्रौद्योगिकी के आगमन व उपयोग के पश्चात् की मानव सभ्यता। परंतु आधुनिक काल में यह चर्चा भी प्रारंभ हो गई है कि प्रौद्योगिकी और मानव के श्रम में कौन-सा संबंध स्थापित होगा? क्या प्रौद्योगिकी मानवीय श्रम को विस्थापित कर देगी? प्रत्येक नई प्रौद्योगिकी, जिसका संबंध विशेष रूप से मानवीय रोज़गार से होता है, के आने से लोगों के मन में आशंकाएँ उत्पन्न होने लगती हैं कि कहीं इससे बेरोज़गारी का संकट तो उत्पन्न नहीं हो जाएगा। इसी प्रकार की प्रौद्योगिकी 'कृत्रिम बुद्धि' है। यह मानवीय जीवन के लगभग सभी क्षेत्रों में प्रवेश कर गई है। किंतु पूर्ववर्ती अन्य प्रौद्योगिकियों की तुलना में कृत्रिम बुद्धि से भविष्य में बेरोज़गारी उत्पन्न होने की अधिक आशंकाएँ व्यक्त की जा रही हैं। ब्रिटेन के प्रसिद्ध वैज्ञानिक स्टीफन हॉकिंग ने तो समस्त मानव समुदाय को सचेत करते हुए यहाँ तक कह डाला- "कृत्रिम बुद्धि का पूर्ण विकास मानव जाति के विनाश का सूचक हो सकता है।" कृत्रिम बुद्धि तकनीक से बेरोज़गारी और मानव सभ्यता पर अस्तित्व के संकट से जुड़ी चिंताओं से पूर्व संक्षेप में यह जान लेना ज़रूरी है कि 'कृत्रिम बुद्धि' क्या होती है, इससे जुड़े लाभ क्या-क्या हैं, जो मानव के लिये 'गेमचेंजर' की भूमिका अदा कर सकते हैं? साथ ही इससे संलग्न खतरे भी कौन-कौन से हैं जिनके कारण कृत्रिम बुद्धि को मानव सभ्यता की 'हितैषी तकनीक' न मानकर इसकी पहचान 'विघटनकारी प्रौद्योगिकी' के रूप में की जा रही है।

2018 में पूछे गए निबंध

1 'जलवायु परिवर्तन के प्रति सुनम्य भारत हेतु वैकल्पिक तकनीकें' (Alternative technologies for a climate change resilient India)

"जंगल, पेड़, पहाड़, समंदर
इंसा सब कुछ काट रहा है
छील-छील के खाल ज़मीं की
टुकड़ा-टुकड़ा बाँट रहा है
आसमान से उतरे मौसम
सारे बंजर होने लगे हैं
मौसम बेघर होने लगे हैं।"

कवि गुलज़ार की ये पंक्तियाँ प्रकृति के अवक्रमण में मानवीय भूमिका की गाथा कह रही हैं जिसका परिणाम आज हमारे सामने 'जलवायु परिवर्तन' के रूप में उपस्थित हुआ है। इस जलवायु परिवर्तन के परिणामस्वरूप एक ओर पृथ्वी के दोनों ध्रुवों की बर्फीली चट्टानें पिघल रही हैं तो दूसरी ओर धरती का तीसरा ध्रुव अर्थात् हिमालय, हिंदुकुश पर्वतमाला का बर्फीला क्षेत्र भी संकुचित हो रहा है। निश्चित ही तीसरे ध्रुव के इस संकुचन का प्रभाव भारत पर भी पड़ रहा है। जलवायु परिवर्तन के इस बहुआयामी एवं बहुव्यापी प्रभाव का सामना करने के लिये हमारे पास जलवायु सुनम्य (जलवायु सह्य) तकनीकें प्रमुख आधार बनकर उभरी हैं। इन तकनीकों में वैज्ञानिक खोजें तथा परंपरागत व स्वदेशी ज्ञान से अर्जित वैकल्पिक तकनीकें शामिल हैं। ध्यातव्य है कि जलवायु परिवर्तन एक दीर्घकालिक प्रक्रिया है जो जलवायु के गुणों में विविध परिवर्तन को संदर्भित करता है और जिसकी पहचान सांख्यिकीय परीक्षण के माध्यम से की जाती है। जलवायु परिवर्तन की इस प्रक्रिया में औद्योगीकरण के पश्चात् मानवीय कारक ने प्रमुख भूमिका निभाई है। भारत सहित पूरी दुनिया में जलवायु परिवर्तन के कारण सूखा, बाढ़, ऊर्जा तथा खाद्य सुरक्षा, प्रवासन, बीमारियाँ, राजनीतिक अस्थिरता एवं सशक्त संघर्ष का खतरा बढ़ा है।

मानवता पर आसन्न उपर्युक्त खतरों ने मानव को विवश किया है कि वह जीवन-योग्य भविष्य के निर्माण के लिये सतत, समावेशी एवं स्थायी वर्तमान की अवधारणा को स्वीकार करे। निश्चय ही इस प्रक्रिया ने मानव को जलवायु सुनम्य (जलवायु सह्य) तकनीकों के विकास के लिये प्रेरित किया है। 'सुनम्यता' एक ऐसी क्षमता है जिसके द्वारा एक खतरनाक घटना या प्रवृत्ति या परेशानी का सामना करने के लिये सामाजिक, आर्थिक और पर्यावरणीय प्रणालियों को तैयार किया जाता है। इस प्रक्रिया में इन प्रणालियों की पहचान, कार्यप्रणाली तथा संरचना को सुरक्षित रखते हुए इनकी अनुकूलन क्षमता को बनाए रखा जाता है। भारत के संदर्भ में सुनम्य वैकल्पिक तकनीकों पर विचार करने से पहले यहाँ जलवायु परिवर्तन से जुड़े खतरों को समझ लेना आवश्यक होगा। जलवायु परिवर्तन की अवधारणा को सत्यापित करने वाली विभिन्न आई.पी.सी.सी. (Intergovernmental Panel on Climate Change – IPCC) की रिपोर्टों पर यदि ध्यान दें तो उनमें स्पष्ट किया गया है कि जलवायु परिवर्तन से नदीय, तटीय एवं शहरी बाढ़ में वृद्धि से बड़े पैमाने पर अवसंरचना, आजीविका एवं बसावट में बदलाव आएगा। इसके अलावा तापजन्य मृत्यु, सूखाजन्य खाद्य असुरक्षा एवं कुपोषण में वृद्धि जैसे सामाजिक, आर्थिक एवं पर्यावरणीय संकट बढ़ेंगे। संयुक्त राष्ट्र की एक रिपोर्ट के अनुसार जलवायु परिवर्तन 2030 तक 122 मिलियन लोगों को अति गरीबी की अवस्था में ले जा सकता है। ऐसी स्थिति में भारत भी गरीब जनसंख्या के दबाव का सामना कर सकता है। इसके अलावा, जलवायु परिवर्तन से बढ़ने वाले समुद्री जलस्तर से मुंबई व कलकत्ता जैसे महानगरों का एक बड़ा क्षेत्र डूब सकता है तो दूसरी ओर सागरीय जल के तापमान में वृद्धि से 'कोरल ब्लीचिंग' बढ़ेगी एवं समुद्री खाद्य संसाधनों पर प्रतिकूल असर पड़ेगा।

चूँकि, समुद्र पर्यावरण व जलवायु के प्रमुख निर्धारक होते हैं, इसलिये इन समुद्रों में होने वाली तापवृद्धि निश्चय ही चिंतनीय है। हाल की एक रिपोर्ट के अनुसार जल्द ही लक्षद्वीप भारत का 'जलवायु परिवर्तन शरणार्थी' संकट का सामना करने वाला पहला क्षेत्र बन सकता है। जलवायु परिवर्तन से जुड़ी हाल की कुछ घटनाओं पर यदि गौर करें तो इसके खतरों को और गहराई से महसूस कर सकते हैं, जैसे पिछले कुछ वर्षों में आई चेन्नई व मुंबई की बाढ़ हो या हाल की केरल की बाढ़। इसी प्रकार 'हुदहुद' एवं 'ओखी' जैसे चक्रवातों की बारंबारता हो या उत्तराखंड में केदारनाथ की त्रासदी। इसके अलावा उत्तराखंड के जंगलों में लगी आग, तमिलनाडु का सूखा तथा चरमताप की बढ़ती घटनाएँ भारत के लिये प्रमुख चुनौती रही हैं। उपर्युक्त चुनौतियों एवं संकट के वातावरण में जो प्रमुख प्रश्न भारत के सामने उभरता है वह यह है कि भारत अपनी विशाल आबादी की आजीविका, स्वास्थ्य तथा विकास को कैसे सुनिश्चित कर पाएगा। भारत की लगभग 36 प्रतिशत विशाल गरीब आबादी को यदि गरीबी से बाहर निकालना है तो भारत औद्योगिक विकास से मुँह नहीं मोड़ सकता, किंतु औद्योगिक विकास की इस प्रक्रिया में पर्यावरण की गुणवत्ता को

2 एक अच्छा जीवन प्रेम से प्रेरित तथा ज्ञान से संचालित होता है (A good life is one inspired by love and guided by knowledge)

"प्रेम स्वर्ग है, स्वर्ग प्रेम है
प्रेम अशंक अशोक।
ईश्वर का प्रतिबिंब प्रेम है
प्रेम हृदय आलोक।।"

–रामनरेश त्रिपाठी

व्यक्ति इस संसार में जन्म लेता है और 'समाजीकरण' की प्रक्रिया के दौरान व्यक्ति को अच्छा जीवन जीने के लिये प्रेरित किया जाता है। अत: व्यक्ति अच्छा जीवन जीने का प्रयास करता है। यह मानव सभ्यता भी उन्हीं व्यक्तियों को याद रखती है, जिन्होंने अच्छा जीवन-शैली करके संसार में सद्भावना, शांति व सौहार्द इत्यादि को बढ़ावा देने का कार्य किया हो। लेकिन अब यह सवाल उठता है कि अच्छा जीवन व्यक्ति किस प्रकार व्यतीत कर सकता है? इसके लिये आवश्यक है कि व्यक्ति का जीवन प्रेम से प्रेरित तथा ज्ञान से संचालित हो। प्रेम से प्रेरित तथा ज्ञान से संचालित व्यक्ति आत्मविश्वास, तार्किक क्षमता, सही-गलत का चुनाव तथा अपनी क्षमताओं का बेहतर उपयोग कर पाता है जो व्यक्ति की सफलता के लिये अत्यंत आवश्यक है। प्रेम से प्रेरित तथा ज्ञान से संचालित मनुष्य में ईर्ष्या, द्वेष एवं कटुता जैसे भाव समाप्त हो जाते हैं और व्यक्ति का सामाजिक समुदाय से मेल-जोल बढ़ने के साथ ही व्यक्ति समाज के प्रति अपने कर्त्तव्य का समुचित तरीके से निर्वहन कर पाता है। अगर व्यक्ति इन दोनों के अनुसार कार्य न करे तो व्यक्ति का जीवन अंधकारमय हो जाएगा, जो मानव सभ्यता के विकास व प्रगति में अंतत: बाधा ही पहुँचाएगा।

उल्लेखनीय है कि अच्छे जीवन के लिये प्रेम और ज्ञान दोनों आवश्यक हैं। प्रेम एक अर्थ में अधिक मौलिक है, क्योंकि यह बुद्धिमान लोगों को ज्ञान लेने के लिये प्रेरित करेगा ताकि वे यह जान सकें कि उन्हें किस तरह से प्यार है। प्रेम ही संपूर्ण विश्व के नागरिकों को आपस में जोड़े रखने (अर्थात् 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना) का कार्य करता है, जिसके द्वारा व्यक्ति दूसरे के दु:ख में दुखी तथा दूसरों के सुख में सुखी होता है। भारतीय संस्कृति में प्रारंभ से ही प्रेम के मूल्य को अत्यधिक महत्त्व दिया गया है और मलिक मोहम्मद 'जायसी' ने प्रेम को सामाजिक मूल्य का रूप दिया है। बिना प्रेम के जीवन मुट्ठी भर राख के समान है– 'मानुस प्रेम भएउ बैकुंठी, नाहीं तो काह छार इक मुंठी।' लेकिन साथ ही ज्ञान का होना भी आवश्यक है। यदि व्यक्ति बुद्धिमान नहीं होगा तो वह केवल उन्हीं बातों पर विश्वास करेगा जितना उसे बताया गया है और अपनी नैसर्गिक सद्भावना के बावजूद उसे अन्य व्यक्तियों से नुकसान पहुँच सकता है। इसके अतिरिक्त, ज्ञान से संचालित होकर व्यक्ति 'लकीर का फकीर' बनने से बचता है और विवेक के अनुसार कार्य करता है। इस संदर्भ में बीसवीं सदी के प्रख्यात दार्शनिक, महान गणितज्ञ और शांति के अग्रदूत 'बर्ट्रेंड रसेल' का प्रस्तुत कथन प्रासंगिक प्रतीत होता है।

गौरतलब है कि प्रेम से प्रेरित होकर व्यक्ति में सहनशीलता, त्याग, करुणा, परोपकार आदि गुणों का विकास होता है। प्रेम हमारी संवेदना को इस कदर जगा देता है कि हम सारी कायनात से प्रेम करने लगते हैं; घर से प्रेम, समाज से प्रेम, देश से प्रेम, प्रकृति से प्रेम, संपूर्ण विश्व से प्रेम। प्रेम में समर्पण तथा प्रतिबद्धता होती है जिसके कारण व्यक्ति समाज की भलाई व सुख में ही व्यक्तिगत भलाई व सुख का अनुभव करता है। इस प्रकार प्रेम से प्रेरित होकर व्यक्ति अच्छा जीवन व्यतीत कर सकता है और प्रेम से प्रेरित अच्छा जीवन 'व्यक्तिगत हित' के ऊपर 'सामाजिक हित' को महत्त्व देता है।

विचारणीय बिंदु है कि प्रेम से प्रेरित होकर ही व्यक्ति वास्तविक 'स्वतंत्रता' को प्राप्त कर सकता है क्योंकि यह स्वतंत्रता दूसरों की स्वतंत्रता को कम नहीं करती है, साथ ही व्यक्ति उच्च आदर्शों व मूल्यों से युक्त होता है। अगर हम संसार में विभिन्न महापुरुषों व विद्वानों के जीवन पर दृष्टि डालें तो उनका जीवन प्रेम से प्रेरित नज़र आता है, फिर चाहे वह महात्मा बुद्ध हों, गांधीजी हों, मार्टिन लूथर किंग हों या नेल्सन मंडेला। इन सभी व्यक्तियों ने प्रेम से प्रेरित जीवन पद्धति से ही समाज की कुरीतियों, शोषण व विषमताओं की समाप्ति की। जैसे महात्मा गांधी ने भारतीय स्वाधीनता आंदोलन में अंग्रेज़ी औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध 'सत्याग्रह' व 'अहिंसा' की पद्धति अपनाई और अंतत: न्यूनतम जन-धन की क्षति के साथ भारत को स्वतंत्रता दिलाई, तो वहीं 'नेल्सन मंडेला' ने दक्षिण-अफ्रीकी सरकार की रंगभेदी नीतियों के विरुद्ध अहिंसक तरीके से आंदोलन चलाया और स्वयं कारावास में भी रहे। यही कारण है कि प्रेम को 'ईश्वर' के समान माना जाता है। प्रेम से प्रेरित होकर ही व्यक्ति दूसरों की चुभन अर्थात् दु:ख को दूर करने का प्रयास करता है।

3 कहीं पर भी गरीबी, हर जगह की समृद्धि के लिये खतरा है (Poverty anywhere is a threat to prosperity everywhere)

"कहीं पर भी गरीबी, हर जगह की समृद्धि के लिये खतरा है। अभाव व दरिद्रता निवारण हेतु प्रत्येक देश में उत्साह तथा साहस के साथ संघर्ष जारी किया जाना चाहिये।" *–अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का फिलाडेल्फिया घोषणा–पत्र (10 मई, 1944)*

जिस समय फिलाडेल्फिया घोषणा–पत्र प्रकाशित हुआ था, उस समय वास्तव में उपनिवेश देशों में वृहद् स्तर पर गरीबी व्याप्त थी। इस संदर्भ में यह घोषणा–पत्र प्रशंसनीय कदम था। आज उस समय से हम 70 वर्ष आगे निकल चुके हैं, लेकिन समस्या जस–की–तस है। बिल गेट्स के शब्दों में कहें तो, "गरीब देशों की संख्या कम हुई है लेकिन गरीबों की संख्या में इज़ाफा ही हुआ है।" गरीबी व इससे उत्पन्न सामाजिक अपवर्जन व असुरक्षा स्वाभाविक रूप में कुंठा, हिंसा व संघर्ष को जन्म देती है, जो समृद्धि व खुशहाली के सारे दावों को खोखला साबित कर देती है।

गरीबी के अनेक पहलू हैं। समाजविज्ञानी इसे अनेक सूचकों के माध्यम से देखते हैं। प्राय: आय व उपभोग के निम्न स्तर को गरीबी से जोड़कर देखा जाता है, लेकिन अब सामाजिक अपवर्जन और असुरक्षा पर आधारित निर्धनता का विश्लेषण सामान्य होता जा रहा है। मोटे तौर पर सामाजिक अपवर्जन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके माध्यम से व्यक्ति या समूह उन सुविधाओं, लाभों व अवसरों से वंचित रहते हैं जिनका उपयोग दूसरे अच्छे से करते हैं। चिंता की बात यह है कि ऐसी वंचना हिंसक संघर्ष को जन्म दे रही है।

> **"आज सामाजिक वंचना के कारण ही नक्सलवाद और आतंकवाद जैसी गतिविधियों को प्रश्रय मिल रहा है जिससे वैश्विक स्थिरता नकारात्मक रूप से प्रभावित हो रही है। यह सहज रूप से समझा जा सकता है कि क्या अस्थिर वातावरण वास्तव में समृद्धि को पोषित कर सकेगा? आतंकवाद के साए में तो आज पूरा विश्व आ चुका है। समृद्ध देश भी इस आतंक के साए में आ चुके हैं। भारत में नक्सलवाद का उदय 1960 के दशक में पश्चिम बंगाल से हुआ था, लेकिन जब इसे गरीबी व असमानता से युक्त सिंचित ज़मीन मिली तो यह तेज़ी से फैला। आज इसने लाल गलियारे के रूप में एक बड़े इलाके को अपने अंदर समेट लिया है।"**

आज सामाजिक वंचना के कारण ही नक्सलवाद और आतंकवाद जैसी गतिविधियों को प्रश्रय मिल रहा है जिससे वैश्विक स्थिरता नकारात्मक रूप से प्रभावित हो रही है। यह सहज रूप से समझा जा सकता है कि क्या अस्थिर वातावरण वास्तव में समृद्धि को पोषित कर सकेगा? आतंकवाद के साए में तो आज पूरा विश्व आ चुका है। समृद्ध देश भी इस आतंक के साए में आ चुके हैं। भारत में नक्सलवाद का उदय 1960 के दशक में पश्चिम बंगाल से हुआ था, लेकिन जब इसे गरीबी व असमानता से युक्त सिंचित ज़मीन मिली तो यह तेज़ी से फैला। आज इसने लाल गलियारे के रूप में एक बड़े इलाके को अपने अंदर समेट लिया है। उग्रवादी गतिविधियों के कारण नक्सल प्रभावित इलाकों में अवसंरचनात्मक विकास अवरुद्ध हो रहा है जिसका प्रत्यक्ष नकारात्मक प्रभाव इन प्रदेशों की समृद्धि पर पड़ रहा है।

दूसरी तरफ, गरीबी की बीमारी तथा पर्यावरण प्रदूषण में भी समानुपातिक संबंध माना जाता है। किसी क्षेत्र की गरीब बस्तियों को डिज़ीज बर्डन क्षेत्र के रूप में चिह्नित किया जाता है। पर्यावरण प्रदूषण का मसला भी सीधे तौर पर गरीबी से जुड़ा है, विशेषकर वहाँ, जहाँ अपनी रोज़ी–रोटी के लिये अपने निकट के प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर होना विवशता होती है। गरीबी से जुड़ी बीमारी व पर्यावरण प्रदूषण की ये दोनों स्थितियाँ व्यापक स्तर पर मानव समृद्धि की राह में बाधा बनती हैं। बढ़ते प्रदूषण व जलवायु परिवर्तन को आज मानव अस्तित्व के लिये सबसे गंभीर खतरा माना जाता है। इसके प्रभाव की जद में पिछड़े व समृद्ध क्षेत्र अब बिना किसी भेदभाव के शामिल हैं। इसी के मद्देनज़र संयुक्त राष्ट्र के पूर्व महासचिव कोफी अन्नान का कथन सत्य प्रतीत होता है, "चरम गरीबी कहीं भी मानव सुरक्षा के लिये खतरा है।"

फिर यदि हम अर्थशास्त्र के दृष्टिकोण से देखें तो यह स्पष्ट होता है कि निर्धनता किसी समृद्ध क्षेत्र के समग्र विकास की संभावना को कम करती है। इसका कारण यह है कि जहाँ व्यापक स्तर पर निर्धनता व्याप्त होती है, वहाँ प्रति व्यक्ति आय व उपभोग का स्तर निम्न होने के कारण मांग का पर्याप्त सृजन नहीं हो पाता है। उदाहरणस्वरूप– हम मान लें कि महाराष्ट्र राज्य औद्योगिक दृष्टि से विकसित राज्य है किंतु उसके उद्योगों को भी तो खपत के लिये एक बाज़ार चाहिये। लेकिन परिधीय राज्यों में चूँकि पिछड़ापन व्याप्त है, इस कारण से मांग सृजन के अभाव में महाराष्ट्र

4 भारत के सीमा विवादों का प्रबंधन एक जटिल कार्य है (Management of Indian border disputes – a complex task)

"हम अपने मित्र बदल सकते हैं, पड़ोसी नहीं।"

भारत के पूर्व प्रधानमंत्री स्वर्गीय श्री अटल बिहारी वाजपेयी का यह कथन भारतीय सीमाओं की जटिल स्थिति तथा इस जटिलता के निराकरण की अपरिहार्यता को परिलक्षित करता है। भारत को स्वतंत्रता विभाजन की शर्तों पर प्राप्त हुई। विभाजन के समय देसी रियासतों की अनिश्चितता के चलते स्पष्ट सीमा निर्धारित न होने के कारण भारत के पहले सीमा विवाद का जन्म हुआ तथा उसके बाद से अब तक लगभग सभी पड़ोसी देशों के साथ अलग-अलग स्तरों पर हमारे सीमा विवाद चल रहे हैं और अभी तक इन विवादों के निराकरण की दिशा में बहुत उल्लेखनीय सफलता प्राप्त नहीं हो सकी है।

ध्यातव्य है कि जब तक सीमा विवादों का हल नहीं निकलता, तब तक संबद्ध देशों का अधिकाधिक ध्यान सीमाओं की सुरक्षा करने तथा किसी भी समय संघर्ष की आशंका के चलते सैन्य तैयारियों में ही लगा रहता है, साथ ही वहाँ की सरकारों के स्तर पर ही नहीं अपितु सामान्य लोगों के स्तर पर भी तनाव बना रहता है। इन विवादों के प्रबंधन व निदान के मार्ग तलाशने हेतु भारत द्वारा कई प्रयास किये गए हैं, परंतु अभी तक कोई उल्लेखनीय सफलता प्राप्त नहीं हुई है। इसका प्रमुख कारण इन विवादों में से प्रत्येक की विशिष्ट प्रकृति है जिससे कि हर समस्या को विशिष्ट रूप से सुलझाने की आवश्यकता है।

भारत को अपना पहला सीमा विवाद स्वतंत्रता के तुरंत बाद पाकिस्तान के साथ देखने को मिला। अंग्रेज़ों ने स्वतंत्रता प्रदान करते समय उनके प्रत्यक्ष नियंत्रण के भू-भाग को दोनों राष्ट्रों के मध्य विभाजित कर दिया तथा देसी रियासतों को दोनों देशों में से एक में विलय करने का विकल्प दिया। कश्मीर के तत्कालीन राजा अनिश्चय की स्थिति में थे, इसी दौरान पाकिस्तानी सेना ने कबायलियों के भेस में आक्रमण कर दिया, राजा को भारत से मदद मांगने, विलय पत्र पर हस्ताक्षर करने तथा भारतीय सेना द्वारा कश्मीर पर नियंत्रण स्थापित करने की प्रक्रिया में पाकिस्तानी सेना द्वारा कश्मीर के एक बड़े भाग पर अधिकार कर लिया गया। भारत ने इस समस्या के समाधान के लिये संयुक्त राष्ट्र संघ की सहायता मांगी, क्योंकि एक नव-स्वतंत्र राष्ट्र के लिये युद्ध वहनीय नहीं था। यूएन द्वारा संघर्ष विराम की घोषणा कर देने के बाद विवाद सुलझाने के कई प्रयास किये गए परंतु समाधान नहीं निकल सका। अंततः 1972 में शिमला समझौते की शर्तों के तहत दोनों राष्ट्रों ने सभी विवादों को द्विपक्षीय स्तर पर ही हल करने का निर्णय लिया। दोनों राष्ट्र कश्मीर के मुद्दे पर 3 युद्ध लड़ चुके हैं किंतु इस विवाद का स्थायी समाधान अब तक नहीं निकल सका है।

कश्मीर, भारत-पाक सीमा विवादों में सबसे प्रमुख रहा, परंतु कश्मीर के अतिरिक्त काराकोरम शृंखला स्थित सियाचिन ग्लेशियर के संबंध में भी दोनों देश विवाद की स्थिति में रहे हैं। इस विवाद का मूल कारण सीमांकन प्रक्रिया की अस्पष्टता रही तथा भारत ने 13 अप्रैल, 1984 को 'ऑपरेशन मेघदूत' के माध्यम से ग्लेशियर पर अपना नियंत्रण स्थापित कर लिया। उसके बाद से ही सियाचिन विश्व का सबसे ऊँचा युद्धक्षेत्र बना हुआ है। कच्छ के रण में स्थित 'सर क्रीक' नामक दलदली भूमि को लेकर भी दोनों देशों के मध्य सीमा विवादों का कोई ठोस हल नहीं निकल सका है।

भारत के दूसरे प्रमुख पड़ोसी देश चीन के साथ भी सीमा विवाद अस्तित्व में हैं। लद्दाख के निकट स्थित अक्साई चिन नामक क्षेत्र, जो कि मूल रूप से भारत का हिस्सा है तथा चीन के साथ सीमा साझा करता है, से होकर चीन द्वारा निर्मित एक सड़क गुज़रती थी। चीन ने इस क्षेत्र पर अपना दावा प्रस्तुत किया और अक्साई चिन को अपने मानचित्र में प्रदर्शित किया। भारत द्वारा विरोध दर्ज कराए जाने के बावजूद चीन ने इसे दरकिनार करते हुए 1962 में भारत के विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया तथा अक्साई चिन क्षेत्र को अपने कब्ज़े में ले लिया और अभी तक यह चीन के कब्ज़े में है। इसके साथ-साथ मैकमोहन रेखा को चीन द्वारा मान्यता प्रदान न किया जाना, हाल ही में चर्चित डोकलाम संघर्ष आदि ऐसे प्रमुख मुद्दे रहे हैं जो कि भारत व चीन के मध्य सीमा विवाद को बढ़ाते रहे हैं। सच तो यह है कि अभी तक इन विवादों की प्रकृति में बहुत बदलाव नहीं आया है।

पाकिस्तान व चीन के साथ प्रमुख सीमा विवादों के अतिरिक्त नेपाल के साथ कालापानी क्षेत्र को लेकर विवाद तथा बांग्लादेश व म्याँमार के साथ सीमा तथा कुछ सीमावर्ती गाँवों को लेकर विवाद की स्थिति अक्सर बनी रहती है जिनका समाधान खोजने की दिशा में संवाद जारी है परंतु अब तक ठोस समाधान नहीं निकल सका है।

5 रूढ़िगत नैतिकता, आधुनिक जीवन का मार्गदर्शक नहीं हो सकती है (Customary morality cannot be a guide to modern life)

"इस दुनिया में नैतिकता के बिना मनुष्य एक जंगली जानवर के समान है।"

फ्राँसीसी लेखक 'अल्बर्ट कैमस' का यह कथन मानव समाज में नैतिकता के महत्त्व को दर्शाता है। वस्तुत: नैतिकता के कारण ही किसी मनुष्य का व्यवहार 'मानवीय' हो पाता है। अगर संसार से नैतिकता समाप्त हो जाए तो मनुष्य की स्थिति उन जानवरों के समान हो जाएगी, जिन्हें अपनी ही प्रजाति से 'भय' उत्पन्न होगा और एक का अस्तित्व, दूसरे के लिये खतरा उत्पन्न करेगा। नैतिकता व्यक्ति के जीवन में मार्गदर्शक की भूमिका निभाती है। जब व्यक्ति जीवन के किसी मोड़ पर संकट या द्वंद्व की स्थिति में होता है तब नैतिकता उसे भली भाँति सही-गलत में अंतर करके उचित मार्गदर्शन प्रदान करती है। लेकिन यह बात भी सत्य है कि जब नैतिकता में रूढ़ियाँ व्याप्त हो जाती हैं तब यह व्यक्ति के जीवन का मार्गदर्शन न करके कई व्यक्तियों और समुदायों के शोषण व अत्याचार का आधार बन जाती है जो अंतत: व्यक्ति के अधिकारों व गरिमा का उल्लंघन करती है।

उपर्युक्त विषयवस्तु के संदर्भित पक्षों पर चर्चा करने से पूर्व हम रूढ़िगत नैतिकता, आधुनिक नैतिकता इत्यादि पक्षों को संक्षेप में समझने का प्रयास करेंगे। वस्तुत: नैतिकता को उन नैतिक सिद्धांतों या मूल्यों के रूप में परिभाषित किया जाता है जो अच्छे और बुरे तथा सही और गलत मानकों का वर्णन करते हैं। नैतिकता वह सामाजिक व्यवस्था है, जो किसी समाज के सदस्यों के लिये 'मूल्यों' और 'आचरण' के प्रतिमानों को निर्धारित करती है और प्रयास करती है कि समाज के सदस्यों का व्यवहार उसी के अनुसार विनियमित रहे। हर समाज तत्कालीन समय में अपनी ज़रूरतों के अनुसार मूल्यों व सिद्धांतों का निर्माण करता है। हालाँकि उन्हें पीढ़ी-दर-पीढ़ी बिना मूल्यांकन आगे नहीं बढ़ाया जाना चाहिये, क्योंकि एक समय पश्चात् पुराने पड़ गए मूल्यों व सिद्धांतों की समाज में कोई ज़रूरत नहीं रह जाती है। इसके बावजूद इन मूल्यों, सिद्धांतों व व्यवस्था को मनाव समाज में नैतिक व्यवहार के लिये आवश्यक माना जाता है और तब वे 'रूढ़िगत नैतिकता' का रूप धारण कर लेते हैं। जैसे- प्राचीनकाल में पशुओं की बलि की प्रथा शायद इसलिये चलाई गई थी कि उनकी संख्या को नियंत्रित किया जा सके, किंतु वर्तमान में धार्मिक पर्व के नाम पर उनकी बलि देना निश्चित रूप से रूढ़िवादी नैतिकता को दर्शाता है। ध्यातव्य है कि आधुनिकता एक सोच है, एक विचार है, जो व्यक्ति को इस दुनिया के प्रति अधिक 'जागरूक' व 'मानवीय दृष्टिकोण' से जीने का सही मार्ग दिखाती है। अत: आधुनिक जीवन में प्राचीन रूढ़िवादी परंपराओं को त्यागकर स्वतंत्रता, समानता व बंधुत्व जैसे मूल्यों को महत्त्व प्रदान किया जाना चाहिये।

अब यह सवाल उठाना लाज़िमी है कि रूढ़िगत नैतिकता, आधुनिक जीवन का मार्गदर्शक क्यों नहीं हो सकती है? अगर हम इस संदर्भ को समझने का प्रयास करें तो यह साफ नज़र आता है कि आधुनिक जीवन में विवेकशीलता, तार्किकता तथा गतिशीलता इत्यादि की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। और अगर हम इन कसौटियों पर रूढ़िगत नैतिकता को आधुनिक जीवन का मार्गदर्शक समझें, तो यह संभव नहीं है क्योंकि रूढ़िगत नैतिकता में परिवर्तन की प्रवृत्ति नहीं पाई जाती। जब यह रूढ़िगत नैतिकता समय के साथ आगे बढ़ती रहती है तो परिस्थितियों के अनुरूप स्वयं परिवर्तित नहीं हो पाती है, जो समाज के अनेक व्यक्तियों के शोषण व अत्याचार का आधार तैयार करती है। भारतीय समाज में मध्यकाल तक स्त्रियों को घर की चारदीवारी में रखा जाता था और उनकी कोई भी बाहरी भूमिका निर्धारित नहीं की गई थी, परंतु स्वतंत्रता पश्चात् महिलाएँ घर से बाहर निकलकर कार्य करने लगीं, लेकिन पुरुषों की यह रूढ़िवादी सोच व नैतिकता यह कतई स्वीकार करने को नहीं थी कि महिलाओं की भूमिका घर के बाहर भी हो सकती है। फलत: समाज में संघर्ष की भावना पैदा होने के साथ ही परिवार विघटन को बढ़ावा मिला।

विचारणीय बिंदु है कि रूढ़िवादी नैतिकता में सभी वर्गों एवं समुदायों की भूमिका नैतिकता के निर्माण में नहीं होती है जिससे वर्ग विशेष शोषण का शिकार होने लगता है, जबकि आधुनिक जीवन में निर्णय की प्रक्रिया में सभी व्यक्तियों की समुचित भागीदारी सुनिश्चित की जाती है जिससे किसी वर्ग के शोषण की गुंजाइश नहीं रहती।

वस्तुत: जीवन में महत्त्व 'संतुलन' का है, जो व्यक्ति को अति भोगवादी एवं चरम वैराग्यवादी परिस्थितियों के मध्य बीच का रास्ता निकालता है। भारतीय एवं पश्चिमी नीति मीमांसा में 'संतुलन' को अत्यधिक महत्त्व दिया गया है, जैसे- सुकरात जीवन में संतुलन के लिये सद्गुणों के विकास पर बल देते हैं तो वहीं गौतम बुद्ध 'मध्यम मार्ग' का प्रतिपादन करते हैं। वर्तमान उपभोक्तावादी संस्कृति एवं आधुनिक जीवन में संतुलन की अत्यंत महत्ता है क्योंकि व्यक्ति पर कार्य का बोझ अधिक होने के साथ ही उपभोक्तावादी संस्कृति उसे विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ प्रस्तुत कर रही है। इन परिस्थितियों में त्यागपूर्वक एवं संयमपूर्वक उपभोग की आवश्यकता है जो रूढ़िवादी नैतिकता नहीं बतलाती है। इस संदर्भ में रूढ़िवादी नैतिकता आधुनिक जीवन का मार्गदर्शन नहीं कर सकती है।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि रूढ़िवादी नैतिकता में धार्मिक परंपराओं एवं मान्यताओं की अत्यधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है और इन्हीं परंपराओं व प्रथाओं के अनुसार वर्तमान समय के सामाजिक नियम व कानून बनाए जाते हैं। जबकि आधुनिक जीवन में धर्म का महत्त्व कम होने

6 अतीत मानवीय चेतना तथा मूल्यों का स्थायी आयाम है ('The past' is a permanent dimension of human consciousness and values)

यदि मनुष्य की चेतना अपने अतीत से स्वतंत्र और भविष्य से स्वायत्त होती तो उसका परिवेशगत बोध भी क्षणिक तथा विच्छिन्न होता, लेकिन मनुष्य में प्रतिस्मरण की अद्‌भुत क्षमता होती है। वह भूत, वर्तमान और भविष्य; त्रिकाल में जीने की कला जानता है। पशुओं की तरह वह अतीत से मुक्त तथा भविष्य से निरापद नहीं होता। अपनी आदिम अवस्था में शायद वह ऐसे जीता होगा तथा उसकी संपूर्ण चेतना तत्क्षण वर्तमान में निमग्न होती होगी। हिंदी के कवि, चिंतक अज्ञेय ने ऐसी अवस्था की व्याख्या इन शब्दों में की है- *"सच्चा वर्तमान ऐसा क्षण है जिसके साथ न तो स्मृति का आभास है और न प्रत्याशा या अपेक्षा का क्योंकि एक अतीत का लक्षण है, दूसरा भविष्य का।"*

सौभाग्यवश अथवा दुर्भाग्यवश एक सामान्य मनुष्य चेतना के इस धरातल पर नहीं जीता। वह अतीत के साथ वर्तमान का तुलनात्मक विवेचन करके यह जान सकता है कि विकास अतीत से भविष्य की दिशा में किस ओर हो रहा है। मानव की यह चेतना भौतिक तथा सामाजिक जीवन से जुड़कर ही सक्रिय होती है और किसी समाज का अतीत इतिहास की श्रेणी में तभी आ पाता है, जब हम उसे संस्कृति सापेक्ष और मूल्यों से आबद्ध करते हैं। मानव सभ्यता के सुदीर्घ विकास के जो भी परिणाम आज हम देखते हैं वे मनुष्य के प्रतिस्मरण करने की इस अद्‌भुत क्षमता के ही परिणाम हैं। वह चीज़ों की अनुपस्थिति में उन्हें याद कर सकता है। वह गुज़रे ज़माने और उससे संबद्ध अनुभवों को अपनी यादों के गलियारों में एक बार फिर से जीवित कर सकता है। वह उसकी तुलना वर्तमान से कर सकता है और आने वाले कल का वह पूर्वानुमान भी कर सकता है। ऐसे में एक ओर जहाँ वह अतीत से सीखता है, वहीं दूसरी ओर भविष्य के लिये योजना बनाकर उसे कार्यरूप भी देता है। एक विशिष्ट कालावधि के अर्थबोध से युक्त अतीत शब्द अत्यंत व्यापक है और चूँकि इतिहास मोटे तौर पर उसी अतीत का ज्ञान है तो अपने व्यापक रूप में यह भौतिक जगत से लेकर संपूर्ण प्राणी जगत से संबंधित कार्य-व्यापारों का संपूर्ण ज्ञान हो जाता है। सामान्य अर्थों में यह संपूर्ण मानव जाति का जीवन-वृत्त है। किसी सीमा तक मनुष्य के ऐहिक नियति का पक्ष होने के कारण उसके लिये वैसे ही अपरिहार्य है जैसे उसकी निजी पहचान के लिये स्मृति।

स्मृति चेतना मनुष्य के मन में अतीत के प्रति जिज्ञासा का सजग भाव उत्पन्न करती है। मानवेतर प्राणी में यह चेतना नहीं होती, इसीलिये उनका कोई इतिहास नहीं होता। बुद्धि और विवेक से संपन्न मानव मूल्य सचेतन तथा मूल्यान्वेषी होता है। वैचारिक परिवेश का वैशिष्ट्य एक व्यक्ति की प्रकृति, प्रवृत्ति तथा विचार की ज़मीन पर उसे अन्य व्यक्तियों से अलग करता है और इसी कारण अलग-अलग मानव समूहों तथा समाजों की संस्कृति भी अलग-अलग होती है। यहीं से व्यक्ति और समाज के द्वैत का प्रश्न भी उठ खड़ा होता है। ऐसे में इतिहास न केवल समाज का, बल्कि यह इन दोनों की सम्मिलित-समन्वित भूमिका से संपन्न होता है। वस्तुत: अतीत के संदर्भ में कोई भी सार्थक बात करने से पहले यह कहना आवश्यक है कि यह दो प्रकार का होता है- मृत अतीत तथा जीवंत अतीत। मृत अतीत का अभिप्राय उस अतीत से है जो पुनर्घटित नहीं हो सकता और न ही उसमें कोई परिवर्तन हो सकता है। इसका संबंध व्यक्ति तथा घटनाओं से है। जबकि, जीवंत अतीत किसी-न-किसी अर्थ में वर्तमान में अपनी प्रासंगिकता बनाए रखते हुए भविष्य के प्रति उन्मुख बने रहते हैं। जीवंत अतीत का संबंध मानव समाज की उन परंपराओं तथा मूल्यों से होता है, जिनसे समाज का वर्तमान एवं भविष्य निर्मित होता है। आश्चर्य नहीं कि लॉक ने इतिहास को 'नैतिक मूल्यों के दस्तावेज़ तथा उसकी व्याख्या' के रूप में व्याख्यायित किया है, वहीं लाइब्निज़ ने इसे 'नैतिक सिद्धांतों पर आधारित जीवन-दर्शन' कहा है।

अतीत, वर्तमान तथा भविष्य के रूप में काल का विभाजन समग्र प्रवाहमान तथा अमूर्त काल के व्यावहारिक बोध और सुविधा के लिये हुआ है। ये कालखंड अपने आप में स्वतंत्र तथा निरपेक्ष नहीं होते, बल्कि अपने स्पर्श-प्रस्थान बिंदुओं पर एक-दूसरे से जुड़े होते हैं। इस प्रकार इनमें एक प्रकार की एकता पाई जाती है। अतीत का संबंध निस्संदेह पूर्व की घटनाओं से होता है, किंतु किन्हीं अर्थों में वह वर्तमान से भी जुड़ा होता है। इस जुड़ाव को एक निरंतर संवाद के रूप में देखा जाना चाहिये। इन्हीं संदर्भों में 'क्रोचे' ने इतिहास की समसामयिकता को प्रतिपादित किया है। समसामयिक हुए बगैर अतीत और वर्तमान के बीच संवाद नहीं हो सकता। मनुष्य इतिहास का उत्पाद भी होता है, उत्पादक भी और उपभोक्ता भी। उसकी स्मृति चेतना से ही संबद्ध होकर उसकी विचार चेतना का उद्‌भव होता है। मानव विवेक के संरक्षण तथा साहचर्य में ही अतीत की घटनाएँ इतिहास की चेतना का आकार लेती हैं। वह अतीतकालीन क्रियाकलापों का अध्ययन तथा मूल्यांकन निर्माता के रूप में करता है और इन्हीं रूपों में उसकी सहज मूल्य चेतना या मूल्य बोध की प्रभावी भूमिका होती है। इसीलिये इतिहास भी ऊपर से चाहे जैसा प्रतीत हो, अतीत का अध्ययन, अंतिम अर्थों में मूल्यों का अध्ययन बनकर ही हमारे सामने आता है। उसके सभी क्रियाकलापों में उसकी मूल्य चेतना ही उसकी प्रमुख प्रेरक शक्ति होती है।

ध्यानपूर्वक देखें तो समस्त मानवीय मूल्यों तथा उससे जुड़कर आई धर्म की अवधारणा के सर्वोत्तम प्रतीक के रूप में ही ईश्वर की कल्पना भी की गई है। ये मूल्य जीवन में व्यक्ति की आस्था को बढ़ाते हैं। मनुष्य इन मूल्यों का पालन करते हुए ईश्वर की सेवा करता है ताकि ईश्वर भी मनुष्य की सेवा करे। अत: साध्य तो अंतत: मनुष्य ही है। धर्म के प्रभाव में मानवीय चेतना जैसे आस्थापरक मूल्यों से जुड़ जाती है, वहीं इन मूल्यों से निर्मित परंपरा का रूढ़ियों के रूप में तब्दील होने का खतरा भी कदाचित कम नहीं होता। परंपराएँ उन मूल्यों का सातत्य होती हैं, वहीं उनमें देश-काल के अनुसार परिवर्तन की गुंजाइश भी होती है, किंतु रूढ़ियों की प्रवृत्ति लकीर पीटने जैसी होती है। इन मूल्यों की खोज मृत अतीत, अर्थात् उस इतिहास में ही होती है। इस प्रकार, तथ्य और मूल्य अतीत के सिक्के के दो पहलू हैं। वे मानव अतीत में घुले-मिले हैं। मूल्य-चेतना, संस्कृति-चेतना और इतिहास-चेतना बाहर से मानव चेतना के विभिन्न आयाम प्रतीत होते हैं, किंतु आंतरिक स्तर पर वे पृथक् नहीं हैं। वे निरंतर उच्चतर मूल्यों की अन्वेषणा के रूप में सानुकूल तथा समुच्चय-स्वरूप किसी जातीय समाज की संस्कृति का निर्माण करते रहते हैं।

7 जो समाज अपने सिद्धांतों के ऊपर अपने विशेषाधिकारों को महत्त्व देता है, वह दोनों से हाथ धो बैठता है (A people that values its privileges above its principles loses both)

एक सुबह मैं तैयार हो रहा था तभी मेरे मित्र ने पूछा, "क्या तुम सच में अपने सिद्धांतों को महत्त्व देते हो?" क्षण भर के लिये मैं रुका और विचार करने लगा कि मेरे वास्तविक सिद्धांत क्या हैं? तत्पश्चात् मैंने महसूस किया कि मेरे प्रत्येक कार्य को मेरे सिद्धांत ही तो मार्गदर्शित करते हैं। वास्तव में मित्र के प्रश्न से पहले मैंने अपने सिद्धांतों पर कभी विचार ही नहीं किया था।

अमेरिकी शब्दकोश मरियम-वेबस्टर में भी सिद्धांतों को 'आचरण के नियम' के रूप में परिभाषित किया गया है। 'सिद्धांत' जीवन के ऐसे निर्धारक तत्त्व होते हैं जो जीवन में हमें सही एवं गलत का मार्ग दिखाते हैं। ये ऐसे गहरे विश्वास हैं जो हमारे प्रत्येक कार्य का निर्देशन करते हैं।

दूसरी तरफ यदि विशेषाधिकारों पर विचार करें तो ये ऐसे विशिष्ट लाभ, अधिकार या प्रदान किये प्रतिरक्षा उपकरण होते हैं जो केवल कुछ व्यक्तियों एवं समूहों को प्राप्त होते हैं। विशेषाधिकार, अधिकार से अलग होते हैं। जैसे- शिक्षा प्रत्येक मानव का एक मौलिक अधिकार है जबकि कार पर लाल बत्ती लगाकर चलना कुछ लोगों का विशेषाधिकार होता है। विशेषाधिकार अपनी मूल प्रकृति में ही असमानता पर आधारित होते हैं।

इस संदर्भ में पंडित नेहरू का कथन है, कि "असफलता केवल तभी आती है जब हम अपने आदर्श, उद्देश्य और सिद्धांतों को भूल जाते हैं।" यह बात छद्म लोकतांत्रिक समाज या वर्तमान से कुछ शताब्दी पहले के समाजों में व्याप्त विशेषाधिकारों के संदर्भ में स्पष्टत: देखी जा सकती है। दुनिया में स्वतंत्रता, समानता, न्याय तथा बंधुत्व की स्थापना के लिये हुई अमेरिकी क्रांति, फ्राँसीसी क्रांति, रूसी क्रांति या भारत का स्वतंत्रता आंदोलन इन विशेषाधिकारों की प्रतिक्रिया में ही फलीभूत हुए हैं।

पूरी दुनिया पर शासन करने वाली ब्रिटिश सत्ता स्वयं को लोकतांत्रिक मूल्यों का वाहक कहती थी, किंतु वास्तव में उसने अपने लोकतांत्रिक सिद्धांतों के ऊपर अपने विशेषाधिकारों को प्रभावी बनाया जिसका परिणाम यह हुआ कि न अस्त होने वाली ब्रिटिश सत्ता का सूर्य अस्त हो गया।

उपर्युक्त उदाहरण के संदर्भ में मूल प्रश्न यह उठता है कि सिद्धांतों पर विशेषाधिकारों को महत्त्व देने पर कोई समाज क्यों सिद्धांतों और विशेषाधिकारों, दोनों से हाथ धो बैठता है? इस संदर्भ में जयशंकर प्रसाद कृत 'कामायनी' की ये पंक्तियाँ सार्थक उत्तर देती हुई प्रतीत होती हैं-

"ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न है
इच्छा क्यों पूरी हो मन की
एक-दूसरे से न मिल सके
यह विडम्बना है जीवन की"

अर्थात् ज्ञान (सिद्धांत) एवं कर्म में एकरूपता या सुसंगति न होने पर जीवन में विषमता का जन्म होता है और ऐसा विषमतापूर्ण जीवन 'मंथर मृत्यु' को ही प्राप्त होता है। अत: विशेषाधिकार, जीवन के मूलभूत सिद्धांतों से असंगत होता है जिससे विशेषाधिकार को महत्त्व देना किसी समाज की विषमता का मूल कारण बनता है।

विशेषाधिकार का आग्रह करने वाला समाज लोकतांत्रिक मूल्यों- समानता, स्वतंत्रता, न्याय, समन्वय, समरसता, सहिष्णुता से दूर हटता जाता है, जिसका परिणाम गरीबी, भ्रष्टाचार, संघर्ष, पर्यावरणीय संकट, असफलता और अंतत: विघटन के रूप में सामने आता है। विघटित समाज के ऐसे उदाहरण वर्तमान में छद्म लोकतांत्रिक राष्ट्रों में आसानी से देखे जा सकते हैं जिसका परिणाम इन राष्ट्रों में गृहयुद्ध, आतंकवाद तथा संघर्ष के रूप में सामने आता है।

नि:संदेह अतार्किक विशेषाधिकारों को प्रश्रय देने वाला समाज न्याय के मूल्य से दूर हटता प्रतीत होता है तथा स्वार्थ को आगे बढ़ाता है। ऐसे समाजों में लिंग, जाति, धर्म, नृजातीयता के आधार पर असमानता दिखाई पड़ती है जिसका एक प्रमुख उदाहरण अमेरिकी दास प्रथा रहा है तो दूसरा उदाहरण भारत की जाति व्यवस्था में देखा जा सकता है। इन विशेषाधिकारों की बड़ी कीमत भारतीय व अमेरिकी समाजों को चुकानी पड़ी। सामाजिक विशेषाधिकार की इस समस्या ने जहाँ अमेरिका को गृहयुद्ध की दलदल में ढकेला, वहीं भारत को आज भी जातीय हिंसा एवं धार्मिक हिंसा का सामना करना पड़ता है।

8 यथार्थ आदर्श के अनुरूप नहीं होता, बल्कि उसकी पुष्टि करता है (Reality does not conform to the ideal, but confirms it)

रोज़ की तरह सुबह-सुबह जब आप जागे तो आपने पाया कि दुनिया कमोबेश वैसी ही है, जैसा उसे छोड़कर आप पिछली रात सोए थे। आप स्वयं, आप ही थे। जिस कमरे में आप सोए थे, वह वैसा ही था। इतिहास हमेशा की तरह अपरिवर्तित था तथा भविष्य सदा की तरह अज्ञेय। दूसरे शब्दों में, यथार्थ को आपने सोने के पहले जैसा छोड़ा था, वह कमोबेश वैसा ही था। यहाँ प्रश्न उठता है कि यथार्थ से हमारा अभिप्राय क्या है? आदर्श क्या है? यथार्थ आदर्श से कितना पृथक् है तथा उसके साथ इसका क्या संबंध है?

यथार्थ के संदर्भ में एक सीधा-सरल उत्तर तो यह हो सकता है कि हम अपनी इंद्रियों के माध्यम से जो देखते, सूंघते, सुनते या छूते हैं, वही यथार्थ है। लेकिन क्या इन इंद्रियों की पहुँच इलेक्ट्रॉन, आर्थिक मंदी, समाज, राजनीति तथा कला के अन्य अमूर्त विषयों तक है? फिलिप के. डिक जैसे विज्ञान गल्प लेखक के अनुसार यथार्थ हठधर्मी होता है। उनके अनुसार इसे हमारे अनुमोदन की आवश्यकता नहीं होती। अपने सामान्य अर्थों में आदर्श से अभिप्राय है- किसी वस्तु, विषय अथवा स्थिति की श्रेष्ठतम अवस्था। इन अर्थों में आदर्श वह अनुकरणीय वस्तु या स्थिति है जो अपनी श्रेणी का सर्वोच्च प्रतिमान प्रस्तुत करता हो। नैतिक तथा धार्मिक जीवन में इन आदर्शों को समाज व मानव जाति के विकास का सहायक माना गया है। सत्य, त्याग, क्षमा, दया जैसे नैतिक आदर्शों के अनुसरण की चर्चा सभी सांस्कृतिक जातीय समाज का अंग रही है और इसी संदर्भ में यह भी मान लिया गया कि सत्य की जय तथा असत्य की पराजय होती है। यहीं पर आदर्श के बरख्स यथार्थ की तुलना अवश्यंभावी हो जाती है और ऐसे में हम विचार करने लगते हैं कि क्या 'यथार्थ' में ऐसा होता है? वास्तविक जीवन में देखें तो कई बार ऐसा होता है और कई बार नहीं भी। वस्तुतः यथार्थ और आदर्श में एक प्रत्यक्ष है, दूसरा कल्पना। दोनों जीवन के उतने ही दूर-पास हैं जितना कि एक प्रवाहमान नदी के दो किनारे तथा उनके बीच का जल। उनमें से किसी एक से जीवन को परिभाषित करने का प्रयास व्यर्थ है। युग चाहे जो हो आदर्श और यथार्थ या स्वप्न और सत्य एक-दूसरे के पूरक होकर ही जीवन को पूर्ण बनाते हैं, लेकिन ये वैसे स्वप्न नहीं हैं जिन्हें हम सोते हुए देखते हैं, बल्कि ये वे स्वप्न हैं जो जीवन को उद्देश्य दे जाते हैं।

सभ्यता के विकास-क्रम के कुछ संदर्भों में उनमें कोई विशेष अंतर नहीं रहने दिया गया है। एक युग का स्वप्न दूसरे युग का सत्य बनता है। या यों कहें कि एक युग का आदर्श दूसरे युग के यथार्थ में रूपांतरित हो जाता है। वस्तुतः आदर्शों को यथार्थ बनाते-बनाते ही हमारी सभ्यता का विकास हुआ है और प्रत्येक नए युग की यात्रा वहीं से प्रारंभ होती है जहाँ हमने पिछले युग को छोड़ा था। इसलिये प्रत्येक युग आदर्श तथा यथार्थ के इस अन्योन्याश्रित संबंधों को पहचानता है। इन अर्थों में यथार्थ को जब आदर्श का आकार प्राप्त होता है अथवा पुष्टि मिलती है तभी हमारा सृजनात्मक विकास संभव हो पाता है। अन्यथा पतनोन्मुख अंधकार के समय में वायवीय और निष्प्राण हो चले आदर्शों का महाशून्य समाज के लोगों को केवल भ्रमित करते ही प्रतीत होता है। वहीं दूसरी ओर विषम और विखंडित यथार्थ की उबड़-खाबड़ पगडंडियाँ हमारी पदचाल को धीमा करती रहती हैं। जीवन की गतिशीलता के लिये क्रिया एवं प्रतिक्रिया दोनों आवश्यक हैं। प्रत्येक प्रतिक्रिया स्वयं में तीव्र तथा एकांगी होती है। उसे भूत और भविष्य की एक समन्वयात्मक कल्पना से संचालित न किया जाए तो वह विकास का स्वरूप ग्रहण नहीं कर पाती। वहीं इस गति का कोई लक्ष्य न हो तो हमारा जीवन विशृंखल तथा विकास से विचलित हो जाता है। विकास चाहे व्यक्ति का हो या पूरी सभ्यता का, उनके लक्ष्य अथवा उद्देश्य ही आदर्शों का स्वरूप ग्रहण करते हैं तथा देश-काल की उर्वर भूमि पर ही यथार्थ का आकार ग्रहण करते हैं। आदर्श का सत्य जहाँ निरपेक्ष होता है, वहीं यथार्थ को सदैव सापेक्ष धरातल की आवश्यकता होती है। आदर्श अपनी व्यक्तावस्था में यथार्थ की परिधि में आ जाता है। इस प्रकार, अपनी चरम गति में यथार्थ जहाँ विक्षिप्त गतिशीलता है, वहीं आदर्श अपनी निष्क्रियता में स्थिर गति को प्राप्त हो जाता है।

यथार्थ से जैसे-जैसे हमारा साबका पड़ता जाता है, उसकी कमियों को आदर्श की रेखाएँ पूर्ण करती चलती जाती हैं। इन दोनों में पाया जाने वाला अंतराल हमें खिन्न तथा दोनों के मध्य सामंजस्य हमें संतोष दे जाता है। यही कारण है कि यथार्थ से आदर्श तक पहुँचने की यह गति मनुष्य की सामंजस्यमूलक प्रवृत्तियों के विकसित रूप पर निर्भर करती है। दो यथार्थ एक जैसे नहीं होते, वे सदैव नवीन होते हैं। आदर्श की परिपाटियाँ ही निश्चित होती हैं। इसीलिये वह आदर्श के समीप हो सकता है, लेकिन उसके एकाकार नहीं हो सकता। फिर भी मनुष्य की अंतःप्रेरणा ऐसी है कि बड़े से बड़ा मिथ्यावादी भी सत्य को सबसे अधिक सम्मान देता है और मलिन तथा कुत्सित व्यक्ति भी पवित्रता को सर्वाधिक मूल्य प्रदान करता है। लेकिन व्यवहार में धर्म, राजनीति और समाज के सारे विधान भी मानव के अंतर्जगत को बांध नहीं पाते। बाह्य जीवन को यद्यपि हम किसी विधि-निषेध से बांध भी सकते हैं, परंतु अंतर्जगत का पूरा संसार इन नियमों से नहीं बंध पाता। मानव जीवन में यथार्थ तथा आदर्श के बीच का संघर्ष इन पंक्तियों में रूपायित हो जाता है-

"यथार्थ और आदर्श के बीच संघर्षमय जीवन/दुविधा और संशय के घनघोर कोहरे के करीब/विफलता के चक्रव्यूह में अभिमन्यु की बेबसी/अंतर्मन को शून्यता की ओर धकेलती मायूसी/मगर ज़िंदगी की इन सब त्रासदियों के बीच/उम्मीदों के दरख्त के नीचे विश्वास की छाँव में सपने पल रहे हैं।"

समग्रतः यथार्थ तथा आदर्श दोनों के कई संदर्भ तथा कई आयाम हैं, लेकिन ऐसा भी नहीं कि समानांतर रेखा की भाँति वे एक-दूसरे से निरपेक्ष एवं स्वतंत्र हैं। यदि हमारा जीवन उसके यथार्थ ज्ञान से अनुपूरित नहीं है तो वह आदर्शों का निर्माण नहीं कर सकता। दूसरे शब्दों में, जिसके पास यथार्थ का आकार नहीं वह मृत शरीर की तरह है और जिसके पास यथार्थ का शरीर नहीं वह आदर्श भटकी हुई आत्मा मात्र होकर रह जाती है। वे एक-दूसरे के सर्वथा अनुरूप नहीं होते हुए भी एक-दूसरे की पुष्टि तो अवश्य ही करते हैं।

2017 में पूछे गए निबंध

1 भारत में अधिकतर कृषकों के लिये कृषि जीवन-निर्वाह का एक सक्षम स्रोत नहीं रही है। (Farming has lost the ability to be a source of subsistence for majority of farmers in India.

एक प्रतिष्ठित पत्रिका का पत्रकार कृषि की स्थिति का जायज़ा लेने के लिये गाँवों में किसानों के बीच जाता है तथा उनसे बतौर सर्वे एक प्रश्न पूछता है कि आप अपने बच्चे को भविष्य में क्या बनाना चाहते हैं? प्राप्त उत्तर बहुत चौंकाने वाला होता है। एक ऐसे देश में जहाँ कृषि मात्र एक आर्थिक व्यवसाय व रोज़गार का प्रश्न न होकर लोगों की संस्कृति, सामाजिक व्यवस्था तथा आस्था से जुड़ा मामला है, जहाँ कृषकों की फसलों के हिसाब से त्यौहारों का निर्धारण होता है तथा कवियों की कल्पना में इसके स्वर्णिम दौर के गीत विद्यमान हैं, वहाँ 40% किसान अपने बच्चे को किसानी नहीं अपनाने देना चाहते! उनके अनुसार विकल्प के रूप में वे बच्चे को कुछ भी सम्मानजनक कार्य करने की सहमति दे देंगे, लेकिन खेती-किसानी की नहीं!! किसानों का यह उत्तर एकबारगी चौंकाता ज़रूर है, लेकिन कोई भी प्रबुद्ध संवेदनशील व्यक्ति भारत में कृषि की स्थिति को देखेगा तो संभवत: यही उत्तर देगा। कृषकों में लगातार बढ़ती आत्महत्या की प्रवृत्ति भारत में कृषि के जीवन-निर्वाह के बेहतर साधन न रह जाने की तस्दीक ही करती है। यह विडंबना इसलिये भी ज़्यादा वीभत्स महसूस होती है क्योंकि भारत ही वह देश है जहाँ 'भूमि' को 'माँ' का दर्जा दिया गया है, जहाँ हर जलवायु उपलब्ध है, जहाँ हर प्रकार की फसल को समर्थन देने वाली मिट्टी है, नदियों का इतना विस्तृत संगम है जो सिंचाई की आवश्यकता को पूरा कर सकता है और पर्वत, पठार, तटीय मैदान, डेल्टा आदि भी यहाँ हैं जिनमें हर प्रकार की फसल का उत्पादन हो सकता है। एक ऐसा विशाल मानव श्रम भी यहीं है जो कृषि से संबंधित पारंपरिक ज्ञान भी रखता है तथा इसके साथ ही उत्पादन को खपाने के लिये विशाल बाज़ार की भी यहाँ उपलब्धता है।

ऐसे में मन में कुछ प्रश्नों का उठना लाज़िमी है, मसलन ऐसे कौन से लक्षण हैं जो भारत में कृषि के जीवन-निर्वाह के सक्षम स्रोत न रह जाने की पुष्टि करते हैं? क्या कृषि की यह दशा भारत में ही है? क्या सभी कृषकों की ऐसी ही स्थिति है? या इसमें भी छोटे-बड़े कृषक, ज़मींदार-रैय्यत व मज़दूर की स्थिति अलग-अलग है? जब कुछ बड़े किसान आज भी कृषि से लाखों कमा रहे हैं तो बाकियों के लिये यह दु:खदायी साधन क्यों है? कृषि का जीवन-निर्वाह का स्रोत न रह जाना क्या वर्तमान की स्थितियों का परिणाम है या कृषि की नियति हमेशा से ही ऐसी रही है? मूल प्रश्न यह है कि कृषि की स्थिति ऐसी क्यों है? क्यों कृषि 'प्राणदायिनी' से 'मौत का औज़ार' बन गई हैं? क्यों आज किसान को सोचते हुए वही स्मृति आती है जो प्रेमचंद ने 'होरी' का वर्णन करते हुए लिखी थी? क्यों पढ़-लिख जाने को किसानी से दूर जाने का पर्याय माना जाता है? और अंतत: कृषि की यह स्थिति कब व कैसे सुधरेगी? इन प्रश्नों की तह तक जाकर ही हम इस मुद्दे की मूल ज़रूरत के साथ न्याय कर पाएंगे।

वर्तमान में, भारत में लगभग 50% प्रत्यक्ष व 70% अप्रत्यक्ष रूप से लोगों के जीवन-निर्वाह का साधन कृषि है। ये लोग कृषि के अंतर्गत फसल उत्पादन के अलावा पशुपालन, बागवानी, मत्स्य पालन, रेशम उत्पादन, वन-वर्द्धन आदि क्रियाओं को संपन्न करते हैं, परंतु इनमें से अधिकांश व्यक्ति इनके माध्यम से एक सम्माननीय व गरिमापूर्ण जीवन हेतु आवश्यक अवयवों को प्राप्त नहीं कर पा रहे हैं। इस वर्ग की शिक्षा, स्वास्थ्य, प्रशिक्षण, बेहतर आवास व अवसर आदि तक पहुँच अभी भी दुरूह बनी हुई है। ज़्यादा चिंतनीय बात तो यह है कि किसानों का एक बड़ा वर्ग कृषि के माध्यम से जीवन-निर्वाह भी नहीं कर पा रहा है तथा आत्महत्या द्वारा जीवन समाप्त करने के लिये अभिशप्त है। निश्चित तौर पर कृषक वर्ग में एक समूह ऐसा भी है जो किसानी के माध्यम से ऐशो-आराम का जीवन जी रहा है तथा जिसके लिये कृषि जीवन-निर्वाह का साधन होने की बजाय एक लाभप्रद व्यवसाय है; परंतु ऐसे लोग अपवाद की संख्या में ही हैं; अधिकांश लोगों के लिये कृषि अस्तित्व का ही प्रश्न बनी हुई है। अपवादस्वरूप जो लोग कृषि के माध्यम से सम्माननीय व आर्थिक रूप से लाभप्रद जीवन जी रहे हैं, वे उस समूह से संबंधित हैं जो या तो कर बचाने के लिये कृषक का लबादा ओढ़े हुए हैं या जिनके लिये कृषि मात्र एक अल्पकालिक पेशा है। भूमि का बड़ा स्वामित्वधारी कृषक वर्ग, जो विभिन्न योजनाओं व उपकरणों का बेहतर प्रयोग कर पा रहा है, के लिये ही कृषि जीवन-निर्वाह का सक्षम स्रोत बनी हुई है।

ऐतिहासिक रूप से कृषि से जुड़े लोगों के लिये भी यह कोई वैभव का साधन नहीं रही है; कर में अधिकतम भागीदारी होने के बावजूद प्राचीन व मध्यकाल में कृषि से जुड़े लाभ कभी भी बहुसंख्यक किसानों को प्राप्त नहीं हुए। इनका अधिकतम हिस्सा बिचौलियों व शासक वर्ग ने हड़प लिया। औपनिवेशिक काल में तो पूरा शोषण तंत्र कृषकों की बदहाली पर ही टिका था तथा कृषकों के अधिशेष को सोखकर ही ब्रिटेन के साम्राज्य को ऊर्जा प्राप्त होती थी।

भारतीय परिप्रेक्ष्य में कृषि का इतना महत्त्व होने के बावजूद यह आज भी बहुसंख्यक कृषकों के लिये जीवन-निर्वाह का सक्षम स्रोत नहीं है। चूँकि, कृषि की उत्पादकता व सशक्तता भूमि, मृदा, जल, जलवायु, तापमान व वर्षण जैसे पर्यावरणीय व भौतिक घटकों; भूमि सुधार, सिंचाई, संकर बीज, ऊर्जा, रासायनिक उर्वरक, कीटनाशक, तकनीक व मशीनीकरण जैसे आर्थिक कारकों तथा राजनीतिक इच्छाशक्ति, प्रशासनिक दक्षता

2 भारत में संघ और राज्यों के बीच राजकोषीय संबंधों पर नए आर्थिक उपायों का प्रभाव। (Impact of the new economic measures on fiscal ties between the union and states in India.)

केंद्र तथा राज्यों के बीच वित्तीय व राजकोषीय संबंधों की व्याख्या संविधान के भाग-12 के अध्याय (1) में की गई है। संघ तथा राज्यों के मध्य वित्तीय साधनों का विभाजन किया गया है। भारतीय संविधान में यह विभाजन 1935 के अधिनियम में किये गए विभाजन पर आधारित है। वर्तमान विभाजन के अनुसार कुछ 'कर' केवल राज्य सरकारों को सौंपे गए हैं। राज्य सरकारें अपने द्वारा लगाए गए करों को स्वयं एकत्रित करती हैं और स्वयं ही अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये उस धन को व्यय करती हैं। अनुच्छेद 266 के अंतर्गत भारत और राज्यों की संचित निधियों और लोक लेखाओं की स्थापना की गई है। संविधान के अनुच्छेद 273, 275 एवं 282 के अंतर्गत राज्यों को तीन प्रकार के सहायता अनुदान प्रदान किये जाते हैं। अनुच्छेद 280 के अनुसार संघ और राज्यों के बीच करों के शुद्ध आगमों के वितरण, राज्यों के बीच ऐसे आगमों के आवंटन, भारत की संचित निधि में से राज्यों के राजस्वों में सहायता अनुदान को शासित करने वाले सिद्धांतों, राज्यों में पंचायतों व नगरपालिकाओं के संसाधनों की पूर्ति के लिये किसी राज्य की संचित निधि के आवश्यक उपायों आदि के बारे में वित्त आयोग सर्वप्रथम राज्य सरकारों को पत्र लिखकर उनसे आगामी पाँच वर्षों में उनके सामान्य राजस्व व्यय और राजस्व से प्राप्त आय के आकलन देने को कहता है। आकलनों के प्राप्त होने पर इनकी विश्वसनीयता की जाँच करने और आवश्यक स्पष्टीकरण के लिये राज्यों के संबंधित अधिकारियों के साथ विचार-विमर्श करने इत्यादि हेतु ही वित्त आयोगों का गठन किया जाता है।

पिछले पाँच दशकों में तकरीबन सभी वित्त आयोगों की अनुशंसाएँ केंद्र सरकार ने स्वीकार की हैं। इन आयोगों ने निरंतर राज्य सरकारों की वित्तीय परेशानियों को समझते हुए राजस्व का हिस्सा बढ़ाने की सिफारिश की है। 80वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, 2000 के माध्यम से संघ व राज्यों के मध्य किये जाने वाले राजस्व वितरण में परिवर्तन किया गया है। इस संशोधन में यह भी कहा गया है कि संघ सूची में निर्दिष्ट सभी कर और शुल्कों का विभाजन संघ और राज्यों के बीच होगा। सहकारी संघवाद को मज़बूत बनाने के लिये नीति आयोग की स्थापना की गई है। FRBM अधिनियम पर गठित एन.के. सिंह आयोग की सिफारिशों की वजह से केंद्र व राज्यों के राजकोषीय संबंध भी प्रभावित हुए हैं। इस आयोग का सुझाव है कि एक ऐसी राजकोषीय परिषद की स्थापना की जानी चाहिये जो राजकोषीय पूर्वानुमान के साथ-साथ निगरानी वाली भूमिका भी अदा कर सके।

हाल के वर्षों में कई ऐसे सुझाव दिये गए जिनके कारण संघ व राज्यों के मध्य वित्तीय संघवाद को मज़बूती मिली है। वाई.वी. रेड्डी की अध्यक्षता वाले 14वें वित्त आयोग ने अपनी रिपोर्ट में केंद्रीय राजस्व में राज्यों की हिस्सेदारी को 32% से बढ़ाकर 42% तक करने का सुझाव दिया है जिसे केंद्र सरकार द्वारा स्वीकार कर लिया गया। इससे केंद्र से राज्यों की ओर कोषों का बिना शर्त अंतरण बढ़ेगा और सभी प्रकार का अंतरण 45% स्तर पर पहुँचने की संभावना है। इससे फिस्कल स्पेस क्रिएट होगा और राज्यों की वित्तीय स्थिति बेहतर होगी, बिना शर्त संसाधनों की उपलब्धता बढ़ने से राज्यों की वित्तीय स्वायत्तता भी बढ़ेगी। 2015-16 में राज्यों को 50% से अधिक राजस्व अंतरित हुआ। निश्चय ही केंद्रीय राजस्व में राज्यों की हिस्सेदारी में वृद्धि के साथ केंद्र के लिये संसाधनों की उपलब्धता प्रभावित होगी। इसके मद्देनज़र वित्त आयोग ने अपनी रिपोर्ट में केंद्र द्वारा चलाई जा रही आठों योजनाओं को बंद करने का सुझाव दिया और कई केंद्र-प्रायोजित योजनाओं के लिये केंद्र द्वारा होने वाले अंशदान में भारी कटौती करने की सिफारिश की। बीस केंद्र प्रायोजित स्कीमों से केंद्रीय समर्थन की वापसी का सुझाव दिया गया। पुलिस बलों का आधुनिकीकरण, राजीव गांधी पंचायत सशक्तीकरण, स्वच्छ भारत मिशन, राष्ट्रीय खाद्य प्रसंस्करण जैसी योजनाओं को बंद करने का सुझाव दिया गया जिससे सामाजिक-आर्थिक समावेशन की प्रक्रिया अवरुद्ध होने की संभावना है। इस रिपोर्ट में सामान्य राज्यों और विशेष दर्जा प्राप्त राज्यों के वर्गीकरण को समाप्त करने की सिफारिश की गई।

इसी रिपोर्ट में ग्यारह राज्यों को अंतरण पश्चात् राजस्व घाटे की भरपाई के लिये ₹1.94 लाख करोड़ की राशि प्रदान की गई। आयोग ने सहयोगी संघवाद की भावनाओं को मज़बूती प्रदान करने के लिये अंतर्राज्यीय परिषद के विस्तार पर बल दिया और इससे यह अपेक्षा की गई कि यह राज्यों के लिये विशिष्ट अनुदानों की पहचान करेगी। राज्यों को आश्वस्त करने के लिये आयोग ने विधायी कार्यवाही के ज़रिये स्वायत्त GST मुआवज़ा फंड की स्थापना का सुझाव दिया। इसने पहले तीन वर्षों के दौरान शत-प्रतिशत, चौथे वर्ष के दौरान 75% और पाँचवें वर्ष में तकरीबन 50% का मुआवज़ा दिये जाने का सुझाव दिया।

3 राष्ट्र के भाग्य का स्वरूप-निर्माण उसकी कक्षाओं में होता है। (Destiny of a nation is shaped in Its classrooms.)

घुन खाए शहतीरों पर की बारहखड़ी विधाता बाँचे
फटी भीत है छत चूती है आले पर बिस्तुइया नाचे
बरसाकर बेबस बच्चों पर मिनट-मिनट में पाँच तमाचे
इसी तरह से दुखहरण मास्टर गढ़ता है आदम के साँचे।

नागार्जुन की यह कविता आज से कई दशक पहले लिखी गई थी। किसी बदहाल स्कूल को देखकर! किंतु अब भी यह बदहाली पूरी तरह से दूर नहीं हुई है। घुन खाए शहतीर व दुखहरण मास्टर आज भी अधिकांश प्राइमरी स्कूलों का सच है। आज भी भारत की शिक्षा व्यवस्था कोई बहुत अच्छी नहीं हो गई है।

किसी भी राष्ट्र के भाग्य का निर्माण उसकी कक्षाओं में इसलिये होता है क्योंकि यहाँ राष्ट्र की पीढ़ी को प्रशिक्षित किया जाता है जिसे भविष्य में राष्ट्र को चलाना होता है- निर्माण, सुरक्षा, नेतृत्व तथा उत्पादन द्वारा। कक्षाओं को यदि हम संकीर्ण रूप में न लें तो उनका विस्तार हर जगह देखा जा सकता है। परिवार, समुदाय, समूह, सोशल मीडिया, मीडिया, राजनीतिज्ञों व कलाकारों से हम हमेशा सीखते रहते हैं, वास्तव में यह चीज़ें भी विस्तृत कक्षाओं का स्वरूप रखती हैं। चूँकि अब स्कूली कक्षाएँ ही इतने विस्तार से समीक्षा की मांग रखती हैं कि अपरिमित प्रश्न उठ सकते हैं। अत: हम स्कूली कक्षाओं से होने वाली राष्ट्र निर्माण प्रक्रिया तक ही केंद्रित रहेंगे।

प्राचीन भारत पूरी दुनिया में जगद्गुरु के रूप में प्रख्यात था, उसी वजह से वह सोने की चिड़िया रहा। दुनिया के कुछ सबसे पुराने विश्वविद्यालय एवं शैक्षिक संस्थाएँ प्राचीन भारत में सक्रिय थीं। गुरुकुल तब शिष्यों से भरे होते थे तथा गुरु-शिष्य संवादों द्वारा भारतीय ज्ञान विकसित होता था। भारतीय ज्ञान का उत्कर्ष प्रदर्शित करने वाले उपनिषद का शाब्दिक अर्थ ही है गुरु के समीप बैठना। भारतीय ज्ञान की विशिष्टता उसकी समग्रता में है, उसके खुलेपन में है। जब तक संवादों के रूप में यह खुलापन बना रहा तब तक भारतीय सभ्यता उत्कर्ष पर बनी रही। जैसे-जैसे भारतीय विश्वविद्यालयों, शैक्षिक संस्थाओं की गुणवत्ता में गिरावट आई, भारत भी सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक-सांस्कृतिक हर ढंग से अवनति को प्राप्त होने लगा। भारत में याज्ञवल्क्य और वाल्मीकि जैसे तमाम गुरु हुए जो शस्त्र एवं शास्त्र दोनों की शिक्षा देते थे। इन गुरुओं की कक्षाओं में अमीर एवं गरीब हर तरह के विद्यार्थी हुआ करते थे। चाणक्य जैसे गुरुओं ने तक्षशिला जैसे विश्वविद्यालयों की कक्षा में चंद्रगुप्त मौर्य जैसे शिष्य तैयार किये जिन्होंने तत्कालीन भारत के भविष्य को आकार दिया। ठीक उसी समय यूनान भी सक्षम गुरुओं और शैक्षिक संस्थानों से समृद्ध था। सुकरात-अरस्तू-प्लेटो जैसे गुरुओं-शिष्यों की तिकड़ी तो विश्वविख्यात है। यूनानी कक्षाओं की गुणवत्ता की वजह से ही यूनानी सभ्यता को दुनिया भर में सम्मान मिल पाया। स्पार्टा के निवासियों को उनकी कक्षाओं में शारीरिक प्रशिक्षण अधिक दिया जाता था जिसका परिणाम ही है कि आज भी दुनिया भर में स्पार्टा वीर सैनिकों व नागरिकों के लिये विशेष सम्मान रखता है। कुल मिलाकर, हम कह सकते हैं कि सभ्यताओं का उत्कर्ष उनकी शिक्षा व्यवस्था और फिर प्रकारांतर से उनकी शिक्षाओं की गुणवत्ता पर निर्भर था। चीन की महान सभ्यता में शिक्षकों का बहुत महत्त्व रहा है। कंफ्यूशियस और लाओत्से जैसे हज़ारों शिक्षक वहाँ हुए तथा उनकी वजह से ही चीन हज़ारों वर्षों से विश्व में अपना अलग स्थान बनाए हुए है। किंतु यदि नोबेल विजेताओं को किसी राष्ट्र की मेधा का पैमाना माना जाए तो ऑक्सफोर्ड, कैंब्रिज, हार्वर्ड व MIT जैसे संस्थान बहुत आगे दिखते हैं और यही वजह रही है अठारहवीं शताब्दी से पश्चिम की पूरब पर बढ़त लेने की। हमारा दुर्भाग्य रहा है कि हम तकनीकी व वैज्ञानिक शिक्षा को मातृभाषा में सीखने से वंचित रहे हैं। यही वजह रही है कि हमारे यहाँ उन मौलिक प्रतिभाओं की भारी कमी रही है जो राष्ट्र के नवोन्मेष में नवप्रवर्तनकारी नीतियों/क्रियाओं का समावेश कर सकें। यदि औपनिवेशिक देशों ने अपनी शिक्षा प्रणाली विकसित की होती तो ये भूख, गरीबी, बेरोज़गारी, अस्वास्थ्यकर स्थितियों से लड़कर तीव्र गति से विकास कर रहे देशों की श्रेणी में आ जाते। जापान, दक्षिण कोरिया व सिंगापुर जैसे एशियाई राष्ट्र यदि 20वीं सदी में विकसित राष्ट्र बने तो उसके पीछे मूल कारण शिक्षा की मज़बूत परंपरा थी। सिंगापुर को 'ली युवानक्यू' ने शिक्षा का एक नया मॉडल दिया जो पूर्ववर्ती 'मलय मॉडल' से ज़्यादा प्रभावी सिद्ध हुआ; और स्वतंत्रता के कुछ ही सालों बाद सिंगापुर नवस्वतंत्र देशों के लिये एक मॉडल बन गया। इसके विपरीत, भारत सहित अन्य दक्षिण एशियाई देश औपनिवेशिक मॉडल से जकड़े रहे क्योंकि उनका सत्ताधारी वर्ग यही चाहता था (उससे उनके विशेषाधिकार वर्षों तक बने रह सकते थे)। भारतीय कक्षाएँ अभाव और बदहाली का खुला दस्तावेज़ थीं या फिर वे भयंकर रूप से अनुकरण करने वाली संस्थाएँ बन चुकी थी। वहाँ परंपरागत नैतिक अवधारणाओं का भी अभाव दिखता है क्योंकि शिक्षकों (जिनके ऊपर हमारी पीढ़ी को तैयार करने का भार है) को या तो अनुत्पादक कार्यों में लगा दिया गया या फिर उसे अभावग्रस्तता का शिकार बना दिया गया है। ऐसे लाखों शिक्षक होंगे जो 2-3 हज़ार रुपए मासिक वेतन पर भारत की नई पीढ़ी को गढ़ने का काम संभाल रहे हैं। जिस देश के शिक्षक तनावग्रस्त, कुंठित एवं अभावग्रस्त हों, उस देश की भावी पीढ़ी कैसी निकलेगी उसकी कल्पना ही डरा देने वाली है। आज यदि स्कूली बच्चों की गतिविधियों व भाषा व्यवहार का निरीक्षण करें तो हिल जाएंगे और यह सोचने पर मजबूर हो जाएंगे कि हम किस लंपट पीढ़ी को तैयार कर रहे हैं। देश में उदारीकरण लागू होने के पश्चात् स्थिति और खराब हुई है क्योंकि भूमंडलीकरण ने लोगों के भीतर आकांक्षाएँ तो खूब जगा

4 क्या गुटनिरपेक्ष आंदोलन (नाम) एक बहुध्रुवीय विश्व में अपनी प्रासंगिकता को खो बैठा है? [Has the Non-Alignment Movement (NAM) lost its relevance in a multipolar world?]

एक तरफ द्वितीय विश्व युद्ध के बाद अमेरिका तथा रूस जैसी दो प्रमुख महाशक्तियों के मध्य उपजा वैचारिक संघर्ष था जिसने शीतयुद्ध को जन्म दिया तो दूसरी तरफ ब्रिटेन व फ्राँस आदि देशों के औपनिवेशिक चंगुल से छुटकारा पाने वाले विभिन्न नवस्वतंत्र राष्ट्र थे। ये नवस्वतंत्र राष्ट्र अभी अपनी इस नई दुनिया को संभालने में जुटे ही थे कि इनके सामने एक और बड़ी व विकट समस्या मुँह बाये खड़ी हो गई। यह समस्या थी, दुनिया का दो धड़ों में बँटना। ये दोनों धड़े न केवल वैचारिक स्तर पर विपरीत ध्रुवों पर खड़े थे, बल्कि इनके बीच शक्ति को लेकर अंदरूनी प्रतिस्पर्धा भी मौजूद थी। ऐसी स्थिति में नवस्वतंत्र देशों पर यह दबाव था कि वह अपनी सुरक्षा के लिये किसी एक महाशक्ति से जुड़ जाएँ, ताकि वह दूसरी महाशक्ति के गुटों के प्रभाव से बच सकें। यह इसलिये भी ज़रूरी था क्योंकि इन नवस्वतंत्र देशों के पास सीमित संसाधन थे। इन्हें अपने विकास के लिये भी विकसित देशों से सहायता की आवश्यकता थी। ज़्यादातर राष्ट्र इन दोनों महाशक्तियों में से किसी एक में शामिल होना अपनी सुरक्षा की दृष्टि से हितकर मानते थे। शीतयुद्ध के इस दौर में नवस्वतंत्र राष्ट्रों के सामने स्थिति कुछ ऐसी थी कि ये राष्ट्र अपनी सुरक्षा के लिये या तो अमेरिका जैसी पूंजीवादी महाशक्ति के साथ जुड़ जाएँ अथवा सोवियत संघ जैसे समाजवादी गुट में शामिल हो जाएँ।

इसके अलावा ये राष्ट्र अभी स्वतंत्रता, स्वायत्तता एवं प्रशासनिक स्तर पर शैशवावस्था में थे। ऐसे में इनका किसी एक गुट में शामिल होना न केवल अपनी स्वतंत्रता को ही दाँव पर लगाना था बल्कि एक दृष्टिकोण से इन्हें अपनी वैकासिक गतिविधियों को और धीमा करना था। इन्हीं समस्याओं से निजात पाने के लिये कुछ नवस्वतंत्र राष्ट्रों ने इन दोनों ही गुटों से निरपेक्ष रहने का फैसला किया। इसका सीधा-सा मतलब था, ये राष्ट्र न तो किसी के पक्ष में थे, न ही किसी के विरोध में। इन देशों ने इसे लेकर आपस में कई बैठकों का आयोजन किया जिसके परिणामस्वरूप 1956 में यूगोस्लाविया के बृजनी द्वीप पर एक संगठन के रूप में गुटनिरपेक्ष आंदोलन की स्थापना की गई।

इस आंदोलन के संस्थापक सदस्यों में यूगोस्लाविया के जोसेफ ब्रॉज़ टीटो, भारत के जवाहरलाल नेहरू, इंडोनेशिया के सुकर्णो, मिस्र के गमल अब्दुल नासिर तथा घाना के क्वाम नकरूमाह थे। वर्तमान में इस संगठन में कुल 120 सदस्य देश शामिल हैं। दरअसल गुटनिरपेक्ष आंदोलन उन राज्यों का संघ है जो शीतयुद्ध के दौर में उत्पन्न हुई दोनों महाशक्तियों अमेरिका तथा सोवियत संघ से अलग अपनी स्वतंत्रता को बनाए रखते हुए निष्पक्ष रूप से अपने विकास के पथ पर अग्रसर हैं। इस आंदोलन का प्रमुख उद्देश्य अपने राष्ट्र की स्वतंत्रता, संप्रभुता, क्षेत्रीय अखंडता तथा सुरक्षा को बनाए रखते हुए आगे बढ़ना और इस संगठन में शामिल देशों को साम्राज्यवाद, नव-उपनिवेशवाद, रंगभेद, नस्लवाद तथा उपनिवेशवाद के अन्य उपकरणों जैसे- आधिपत्य, वर्चस्व, हस्तक्षेप आदि से सुरक्षा प्रदान करना है।

इसके अलावा ये देश अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के लोकतंत्रीकरण के लिये भी ऐसा चाहते थे कि वे इन गुटों से निरपेक्ष रहें। अगर कोई नवस्वतंत्र देश किसी गुट में शामिल होता था तो बहुत संभावना थी अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के स्तर पर भी उसकी नीतियाँ उन्हीं सूत्रों से परिचालित होतीं। साथ ही, वे देश विकसित देशों के साथ बराबरी के व्यवहार में भी नहीं आ पाते। नाम में शामिल देश एक-दूसरे के सहयोग एवं समन्वय से अपने सामाजिक-आर्थिक विकास के क्षेत्र में आगे बढ़ सकते थे। यह इसलिये भी ज़रूरी था क्योंकि एक निरपेक्ष गुट के रूप में ये देश यूएन जैसी अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं में भी अपनी स्वतंत्र आवाज़ उठा सकते थे और तृतीय विश्व की ज़रूरतों के अनुसार उसकी नीतियों को प्रभावित कर सकते थे। अपने इन उद्देश्यों में नाम ने बहुत हद तक सफलता भी पाई। नाम ने सहस्राब्दी विकास लक्ष्यों और धारणीय विकास लक्ष्यों के प्रति प्रतिबद्धता व्यक्त कर वैश्विक स्तर पर एक महत्त्वपूर्ण उदाहरण पेश किया। इसने यूएन की वर्तमान संरचना एवं शक्ति केंद्रीकरण की आलोचना करते हुए इसके संरचनागत सुधार के लिये सिफारिश की। इसके द्वारा प्रस्तावित संयुक्त राष्ट्र सुधारों का उद्देश्य संयुक्त राष्ट्र की प्रक्रिया में पारदर्शिता और नीति-निर्णयन में लोकतांत्रिक मूल्यों का समावेश करना था। इसके अलावा इसने यूएस की ईरान पर चढ़ाई को लेकर अमेरिका की विदेश नीति की आलोचना भी की। इसने दक्षिण-दक्षिण सहयोग के माध्यम से विकासशील देशों के अन्य संगठनों के साथ कई मोर्चों पर सहयोग भी किया। इसके अलावा बात चाहे निःशस्त्रीकरण की हो या मानवाधिकार की अथवा सांस्कृतिक विविधता की, नाम ने हर स्तर पर अपनी प्रभावी भूमिका निभाई।

लेकिन अब समझना यह भी है कि जब 1991 में सोवियत संघ के विघटन से लेकर वर्तमान दौर तक वैश्विक नीतियों में एक व्यापक परिवर्तन आया है, ऐसे में गुटनिरपेक्ष आंदोलन कितना प्रासंगिक रह गया है? चूँकि गुटनिरपेक्ष आंदोलन का मूल उद्देश्य दो महाशक्तियों के गुटों के निरपेक्ष रहकर विकास कार्यों पर ध्यान देना था; परंतु वर्तमान परिप्रेक्ष्य में जब वैश्विक स्तर पर शक्तियों के विभिन्न ध्रुव उभर रहे हैं, ऐसे में गुटनिरपेक्ष आंदोलन का क्या अर्थ रह जाएगा?

5 हर्ष कृतज्ञता का सरलतम रूप है।
(Joy is the simplest form of gratitude.)

कृतज्ञता व्यक्त कर हम सामाजिकता का निर्वाह करते हैं और सामने वाले को खुशी देते हैं। आभारी होना या शुक्रिया अदा करना या कृतज्ञ होना आखिर है क्या? अगर हम अपनी आँखें खोलकर अपने आसपास नज़र डालें और देखें कि हमें ज़िंदगी में जो कुछ भी हासिल हो रहा है उसमें किन-किन चीज़ों और लोगों का योगदान है तो हम उन सबके प्रति आभारी हुए बिना नहीं रह पाएंगे। जैसे आपके सामने खाने की थाली आ जाती है। क्या आपको पता है कि उस रोटी को तैयार करने में कितने लोगों का योगदान है? बीज बोने व फसल तैयार करने वाले किसान से लेकर अनाज बेचने वाले और फिर उसे खरीदने वाले दुकानदार तक और फिर दुकान से खरीदकर रोटी बनाने वाले तक, यानी एक बनी-बनाई रोटी के पीछे कितने लोगों की मेहनत और योगदान छिपा है। ठीक इसी तरह से हम ज़िंदगी के हर पहलू पर गौर करें तो हमें दिखाई देगा कि हर पल मिल रही साँस से लेकर हमें हासिल होने वाली प्रत्येक चीज़, जिसका हम आनंद ले रहे हैं या अनुभव कर रहे हैं, अगर इस प्रक्रिया की पूरी कड़ी में जुड़े लोगों ने अपना-अपना काम नहीं किया होता तो हम चाहे जितने भी पैसे खर्च कर लेते, वह सब नहीं मिल सकता था जो मिल रहा है। अगर आप यह सब महसूस कर सकते हैं तो पाएंगे कि कृतज्ञता महसूस करने के लिये कोई नज़रिया विकसित करने की ज़रूरत नहीं है। अपनी इस भावना को प्रकट करने के लिये आपका हर्ष व्यक्त करना ही काफी रहेगा। वस्तुत: कृतज्ञता कोई नज़रिया नहीं है अपितु यह एक ऐसा झरना है जो उस समय खुद-ब-खुद फूट पड़ता है जब कुछ प्राप्त होने या मिलने पर आप अभिभूत हो उठते हैं। असीम कृतज्ञता से भरा एक क्षण भी आपके पूरे जीवन को बदलने के लिये काफी है। कृतज्ञता सिर्फ 'धन्यवाद' कह देना भर नहीं है। अस्तित्व में जितनी भी चीज़ें फिलहाल मौजूद हैं, सभी हम लोगों को जीवित और सुरक्षित रखने के लिये आपस में मिलकर काम कर रही हैं। अगर हम अपने जीवन के सिर्फ एक घटनाक्रम पर ध्यान दें तो हम उन सभी के प्रति कृतज्ञ हुए बिना नहीं रह पाएंगे जिनका हमारी ज़िंदगी से कोई लेना-देना ही नहीं है, फिर भी वे हमारे जीवन को हर पल कितना कुछ देते रहे हैं। दरअसल, जब आप नज़र दौड़ाकर देखेंगे कि आपकी ज़िंदगी कैसे चल रही है तो आप कृतज्ञ हुए बिना नहीं रह सकते हैं? अगर आप यह समझकर बिंदास ज़िंदगी जी रहे हैं कि आप इस दुनिया के राजा हैं तो फिर आप हर चीज़ को खो रहे हैं। अगर आप बहुत ज़्यादा अपने आप में या अपने अहं में डूबे हुए हैं तो फिर आप जीवन की उस संपूर्ण प्रक्रिया से चूक सकते हैं, वरना अगर आप उन्हें ध्यान से देखेंगे तो सबकुछ आपको अभिभूत कर देगा। अगर आप कृतज्ञ हैं तो आप ग्रहणशील भी होंगे। अगर आप किसी के प्रति आभारी होते हैं तो आप उसकी ओर आदर भाव से देखते हैं। जब भी आप किसी चीज़ को आदर भाव से देखते हैं तो आप और अधिक ग्रहणशील हो जाते हैं। (हर्षित होने की हद तक) कृतज्ञता से अभिभूत हो जाना ग्रहणशील होने का एक खूबसूरत तरीका है। व्यक्ति की सीमाओं का इससे कुछ हद तक विस्तार होता है। वैसे, उपकृत होने का अहसास ही मानव का मूल स्वभाव है, पर हम इसे प्राय: दबा देते हैं क्योंकि इसे हम अपनी कमज़ोरी मान लेते हैं। हम ऊपरी मन से भी धन्यवाद तभी कहते हैं जब उसकी ज़रूरत या उपयोगिता नज़र आए वरना स्वयं को मिली प्रत्येक सौगात या स्वयं के प्रति की गई सेवा को हम बड़े ठंडे व अनमने भाव से लेते हैं, मानो यह तो हमारा हक ही हो। यह हमारा दुर्भाग्य ही होगा अगर ईश्वर या प्रकृति की कोई देन हमें रोमांचित नहीं करती या हमारे मन में आनंद, उल्लास या हर्ष का आवेग पैदा नहीं होता। यदि ऐसा है तो आपका जीवन खुशगवार नहीं रहेगा, उसमें से रस, रंग व महक खत्म हो जाएगी। आपके मन से यदि कृतज्ञता का भाव नष्ट हो जाए तो आपके जीवन से हर्ष एवं खुशी गायब हो जाएगी। हमें याद रखना चाहिये कि कृतज्ञता व्यक्त करने से भी ज़्यादा इसे महसूस करना ज़रूरी है, इससे आनंद मिलता है। यदि हमें इसे व्यक्त करना ही हो तो सरलतम रूप में इसे हर्ष द्वारा व्यक्त कर सकते हैं। कवि प्रियंकर इस कृतज्ञता को महसूस करते हुए कहते हैं–

कृतज्ञ हूँ मैं
जैसे आसमान की कृतज्ञ है पृथ्वी
जैसे पृथ्वी का कृतज्ञ है किसान
कृतज्ञ हूँ मैं
जैसे सागर का कृतज्ञ है बादल
जैसे नए जीवन के लिये
बादल का आभारी है नन्हा बिरवा।

6 भारत में 'नए युग की नारी' की परिपूर्णता एक मिथक है। (Fulfilment of 'new woman' in India is a myth.)

इस बार स्त्रियाँ अपनी गाथा खुद लिखेंगी
जहाँ चीर-हरण होने पर वह
भरी सभा में प्रार्थना नहीं करेंगी
नहीं मांगेंगी देवताओं से लज्जा की भीख
वह टूटती-बिखरती खुद खड़ी होंगी
उसके भीतर एक आग छुपी है साधो
वह दंतकथाओं की फीनिक्स पक्षी की तरह
अपनी ही राख से उठ खड़ी होंगी।

....और वह 'नई स्त्री' होगी। 'नई स्त्री' या 'नए युग की नारी' कुछ और नहीं बल्कि वह उन पुरातन परंपराओं का प्रतिकार है जिसने उसे वर्षों तक उपेक्षा के हाशिये पर किनारे रखा। नई स्त्री हर उन बेड़ियों को तोड़ने का साहस रखती है जिसने उसकी शारीरिक-मानसिक स्वच्छंदता पर बंधन आरोपित किये। नई स्त्री हर वो काम करेगी जो उसकी मर्ज़ी पर निर्भर है। वह उन सीमाओं और बंधनों को तोड़ देगी जो पुरुषों ने 'स्त्री' होने के कारण उस पर लाद दिये हैं। वह शिक्षित होगी, वह कुशल होगी, वह रचनात्मक होगी और जगत की निर्मात्री होगी। वह अपनी भूमिका स्वयं तय करेगी और वह उन्मुक्त होगी, स्वच्छंद होगी; शारीरिक तल पर, मानसिक तल पर और वैचारिक तल पर भी। 'नई स्त्री', प्राचीन की सातत्य नहीं विलोम होगी, विचार की समन्वयक नहीं क्रांतिकारी परिवर्तन की वाहक होगी, वह बंधनों को कमज़ोर करने पर राजी नहीं, वह उन्हें तोड़ कर मानेगी। नई स्त्री की कल्पना में स्त्री अब तक की परंपरा से बिल्कुल अलग एक अलग ही प्राणी होगी।

नारीवादी साहित्य में 'नई स्त्री' की संकल्पना सर्वप्रथम बीसवीं सदी में सामने आई। सर्वप्रथम आयरिश नारीवादी लेखिका सारा ग्रैंड ने अपने लेख 'स्त्री प्रश्न के नए आयाम' (The New Aspect of the Woman Question) में इस पद का प्रयोग किया। आगे ब्रिटिश-अमेरिकी लेखिका हेनरी जेम्स ने इसकी गहरी व्याख्या की एवं नई स्त्री को नारीवादी वैचारिकी के तल पर प्रमुख स्थान दिलाया। उनके साहित्यिक किरदारों में स्त्री पात्र पहले से बिल्कुल अलग एवं अनूठे प्रकार के होते थे। वह स्त्री स्वच्छंद रूप से साइकिल चलाती, सिगरेट के धुएँ उड़ाती, मर्जी के फिजिकल एक्टिविटिज़ करती और मनमर्ज़ी कपड़े पहनती, अल्हड़-मदमस्त रहने वाली होती। वह शिक्षित, स्वतंत्र कॅरियर एवं आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर स्त्री होती। यह नई स्त्री समाज एवं वर्कफोर्स में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती।

स्त्री के नयेपन या समाज में स्त्री की भूमिका को बदलने में सर्वाधिक प्रभाव 19वीं सदी के स्त्री मताधिकार आंदोलन का पड़ा। पश्चिमी देशों में औद्योगीकरण एवं शहरीकरण बढ़ने के साथ-साथ शिक्षा एवं रोज़गार के अवसर बढ़े। इससे उनमें शिक्षा, विशेषकर व्यावसायिक शिक्षा का स्तर बढ़ा। अब वे पुरानी भूमिकाओं को त्यागकर समाज की बड़ी भूमिकाओं में आने लगीं। वे प्रोफेसर, वकील, डॉक्टर तथा जर्नलिस्ट आदि रूपों में समाज की नीतियों को निर्धारित करने लगीं। इसके बाद उसने सामान्य अधिकारों से आगे यौनिक स्वायत्तता उन्मुक्तता तथा विशिष्ट पहचान की लड़ाई लड़ी। नई स्त्री अपनी यौनिक स्वायत्तता को अत्यधिक महत्त्व देती है तथा इसे लेकर अनैतिकता जैसी बातों को सिरे से अस्वीकारती है। अब उसका संघर्ष विशिष्ट पहचान एवं यौनिक स्वायत्तता की स्वीकृति को लेकर है।

लेकिन इस नई स्त्री की कुछ सीमाएँ भी हैं। इसकी विचारधारा का स्तर जिन वैचारिक क्रांतिकारिता को लेकर है, वह प्रायः विकासशील तथा अल्पविकसित पारंपरिक देशों की वैचारिकी में घुल नहीं पाता। यह 'नई स्त्री' दरअसल स्त्रियों को तो संबोधित करती है, परंतु संपूर्ण विश्व या कहें कि विभिन्न समाजों एवं समुदायों की स्त्रियों को संबोधित नहीं कर पातीं। इस नई स्त्री का आग्रह मूल रूप से पश्चिम की स्त्रियों को लेकर है, पूर्व की स्त्रियाँ प्रायः इसके विमर्श से बाहर हैं। ऐसा स्वाभाविक भी है, क्योंकि हर समाज की रचना प्रक्रिया, उसकी स्थिति, उसके वैचारिक आधार भिन्न होते हैं। ऐसे में एक विचारधारा विभिन्न सामाजिक संरचनाओं को एक ही स्तर पर प्रभावित करे, ऐसा लगभग असंभव है। यदि भारत की बात करें तो भारत की स्थिति पश्चिम की तुलना में बिल्कुल अलग है। यहाँ की स्त्रियों की मनःस्थिति पूर्णतः पश्चिम से मेल नहीं खा पाती। अगर कुछ नारीवादी स्त्रियाँ इसका प्रयास भी करती हैं तो वह महज़ कुछ समूहों तक सिमट कर रह जाता है, उसकी सामाजिक स्वीकृति नहीं हो पाती। ऐसा स्वाभाविक भी है। जहाँ भारत में आज भी राजनीतिक-सामाजिक विमर्शों में गरीबी, बेरोज़गारी, भूख, कुपोषण जैसे मुद्दे केंद्र में हैं एवं प्रायः स्त्री हाशिये पर है, वहाँ स्त्री का नई स्त्री के स्वरूप में आ पाना लगभग एक भ्रांति सम ही होगा।

पश्चिम में जहाँ स्त्रियों को सामान्यतः शिक्षा, रोज़गार तथा समानतामूलक कानून जैसे अधिकार प्राप्त हो चुके हैं और अब वे यौनिक स्वच्छंदता तथा पुरुषों से इतर विशिष्ट पहचान के लिये संघर्ष कर रही हैं। यहाँ तक कि पश्चिम के वर्तमान नारीवादी विमर्शों में सबाल्टर्न नारीवाद तथा इकोलॉजिकल नारीवाद जैसे मुद्दे केंद्र में हैं, वहीं भारत जैसे विकासशील देशों में अभी नारियों को सामान्य बुनियादी अधिकार भी प्राप्त नहीं हैं। अभी भी भारत में महिलाओं को लेकर मूलतः शिक्षा, रोज़गार, शौचालय, कुपोषण तथा मातृत्व मृत्यु दर जैसे मुद्दे ही केंद्र में हैं। अभी भी ग्रामीण तथा कस्बाई स्त्रियाँ वर्षों पुरानी परंपराओं, घूँघट और अमानवीय रिवाज़ों से बाहर नहीं निकल पाई हैं। ऐसा नहीं है कि भारत जैसे विकासशील देशों की ऐसी स्थिति केवल पारंपरिक सामाजिक संरचनाओं के कारण है, बल्कि इसके पीछे सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक पृष्ठभूमि का बड़ा कारक विद्यमान है।

7 हम मानवीय नियमों का तो साहसपूर्ण सामना कर सकते हैं, परंतु प्राकृतिक नियमों का प्रतिरोध नहीं कर सकते। (We may brave human laws but cannot resist natural laws.)

जर्मनी की सीमा रक्षा हेतु खड़े दो सार्जेंट नील और लिंडसे बहुत सतर्क होकर बेल्जियम सीमा पर पहरा दे रहे थे। यह अतिरिक्त सतर्कता इसलिये क्योंकि इधर बेल्जियम, हॉलैंड व इटली के रास्ते अवैध आप्रवासियों की घुसपैठ काफी बढ़ गई है। इन घुसपैठियों की संख्या में अचानक होने वाली वृद्धि का मूल कारण सीरिया, इराक, लीबिया, यमन, अफगानिस्तान, ट्यूनीशिया आदि देशों में हुआ युद्ध और विनाश है। दोनों सार्जेंट अपने-अपने हाथों में कागज़ का एक टुकड़ा लिये हुए हैं जो जर्मनी की संसद द्वारा पास किये गए कानून हैं। ये कानून शरणार्थियों के बारे में थोड़े कठोर प्रावधानों वाले हैं। रात में पड़ रही कड़ाके की ठंड की वजह से दोनों ने आग जलाने का निश्चय किया। वे आग के समीप बैठे ही थे कि उन्हें सीमा के पास 'नो मैंस लैंड' में कुछ महिलाओं के चीखने व रोने की आवाज़ सुनाई दी, चीखती आवाज़ों का पीछा करते हुए वे वहाँ जा पहुँचे जहाँ कुछ अपराधी समूह शरणार्थी महिलाओं की इज्ज़त लूटने का प्रयास कर रहे थे। लिंडसे व नील ने बल प्रयोग कर उन तीन अपराधियों को मार भगाया और महिलाओं के इस समूह की रक्षा की। महिलाओं का यह जत्था सीरिया से चला था और उत्तरी इटली में अपने परिवारों से बिछुड़ गया था। क्योंकि जब वे लोग फ्राँस की सीमा को पार करने का प्रयास कर रहे थे तो फ्राँस के सुरक्षा बलों ने इस दल के पुरुष सदस्यों को पकड़कर उन नौकाओं में बिठा दिया था जो फ्राँस जा रही थीं। नील इस असहाय दल को शरणार्थी के रूप में लेना तो चाहता था किंतु उसे नए कानून का डर था, इस पर लिंडसे ने कहा कि यह असाधारण मानवीय संकट है, इससे मुँह मोड़कर जर्मनी मानवाधिकारों पर कुछ कहने-बोलने की स्थिति में नहीं होगा। हम मानवीय कानूनों के बहाने लोगों के प्राकृतिक एवं सार्वजनिक अधिकारों का हनन होते नहीं देख सकते। प्राण रक्षा एक प्राकृतिक कानून है, केवल कुछ मानवीय कानूनों की आड़ लेकर हम इसको नज़रअंदाज़ नहीं कर सकते।

आजकल भीड़ के न्याय अथवा मत्स्य न्याय की अराजक स्थितियाँ चिंता पैदा करने वाली हैं। पद्मावती विवाद में बगैर फिल्म देखे उसके निर्माता व कलाकारों को धमकी दी जा रही है। केवल शक के आधार पर गो-गुंडे किसी की पिटाई करके हत्याएँ कर दे रहे हैं। कोई क्या खाएगा क्या नहीं, यह भीड़ निर्धारित कर रही है। निश्चय ही यह अराजक स्थिति इसलिये है क्योंकि यहाँ चुनने, न्याय पाने, जीवित रहने के प्राकृतिक कानूनों को भंग किया जा रहा है। जब भी हम मनुष्य के प्राकृतिक कानूनों को नज़रअंदाज़ करते हैं असल में हम अमानवीय व अराजक परिस्थितियों का ही निर्माण करते हैं। फिर वह चाहे इराक के यजीदी लोग हों, म्याँमार के रोहिंग्या हों अथवा उपसहारा के भूखे कबीले के लोग ही क्यों न हो, प्राकृतिक कानूनों को नज़रअंदाज़ करने का नतीजा कितना भयावह है यह खुले तौर पर देखा जा सकता है। दुनिया में अन्याय और अशांति का माहौल वहीं है जहाँ किन्हीं समूहों ने प्राकृतिक कानूनों को नज़रअंदाज़ करना शुरू किया है। यह कितनी विडंबनापूर्ण स्थिति है कि दुनिया की तमाम जगहों पर मानवीय कानूनों (हदीस) के नाम पर अल्लाह के कानूनों (प्राकृतिक विधि) को रौंदा जा रहा है। ऐसा जहाँ-जहाँ भी किया जा रहा है, वे दुनिया के सबसे अशांत, अमानवीय एवं खतरनाक स्थान बन चुके हैं। सीरिया, इराक, यमन, अफगानिस्तान, सोमालिया व लीबिया जैसी जगहें नरक तुल्य बन चुकी हैं। फिलिस्तीन में भी इज़राइली लोग फिलिस्तीनियों को प्राकृतिक कानूनों से वंचित कर मानवता के विरुद्ध न केवल अपराध कर रहे हैं बल्कि दुनिया भर में अहर्निश तनाव का कारण बन रहे हैं। हालाँकि यह भी सच है कि मुस्लिम बहुल देश अल्पसंख्यकों के मामले में दोहरे मापदंड रखते हैं। जहाँ-जहाँ मुस्लिम कानून लागू हैं वहाँ अल्पसंख्यकों को उनके प्राकृतिक कानूनों से वंचित किया जा रहा है। वह चाहे पाकिस्तान हो, ईरान हो या साउदी अरब आदि देश- इन सभी जगहों पर अल्पसंख्यक समुदायों की जान-माल, विश्वासों तथा स्वतंत्रता की अन्य अवधारणाओं की प्रतिदिन धज्जियाँ उड़ाई गई हैं। पाकिस्तान का ईशनिंदा कानून दुनिया के कुछ घृणास्पद कानूनों में शामिल है जो अल्पसंख्यकों के प्राकृतिक अधिकारों पर हमला करता है। यह स्वाभाविक है कि संविधान तथा विधि संहिताओं में भले ही खोट हो सकती है किंतु प्राकृतिक अधिकारों को प्रदान करने वाले कानून भला खोटयुक्त कैसे हो सकते हैं, जब तक कि वे प्राकृतिक ज़रूरतों को सुनिश्चित करते हों। लोगों की प्राकृतिक ज़रूरतों पर रोक लगाने वाला कोई कानून कैसे स्वीकार्य हो सकता है? यदि कहीं भी ऐसा कोई मानवीय कानून लाया जाता है, जो लोगों के प्राकृतिक अधिकारों पर चोट करता हो तो प्राकृतिक रूप से लोगों को इसका विरोध करने का अधिकार है। भारत का स्वतंत्रता संग्राम भी ऐसी ही भावना से प्रेरित था। फ्रेंच व अमेरिकी क्रांतियाँ ऐसी ही भावना का प्रतिनिधित्व करती थीं। इसलिये इन क्रांतियों के संपन्न होने के बाद जिन अधिकारों की घोषणा हुई उनमें प्राकृतिक कानूनों को अनिवार्य रूप से स्वीकार किया गया और उन्हें लागू भी किया गया। संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना के पश्चात् जो मानवाधिकार संबंधी घोषणाएँ की गईं, उनमें भी प्राकृतिक कानूनों को प्रमुख स्थान दिया गया।

सेंट थॉमस एक्बीनास, अरस्तू, प्लेटो, सिसरो आदि के विचार हों या अमेरिका, ब्रिटेन आदि की विधि संहिताएँ, उनमें प्राकृतिक विधि की अपरिहार्यता का विचार प्रभावी है। सिसरो कहता है, "प्राकृतिक कानून हमें बड़े समाज के सामान्य भंडार में योगदान करने के लिये बाध्य करता है। उनका उद्देश्य नागरिकों की सुरक्षा, राज्यों का संरक्षण, शांति और मानवीय जीवन की खुशी प्रदान करना है।" सिसरो ने प्राकृतिक कानूनों को सार्वभौमिक बताया और लिखा कि इन्हें कभी भी परिवर्तित नहीं किया जा सकता है। उनके अनुसार- "प्राकृतिक कानून सभी राष्ट्रों और सभी

8 'सोशल मीडिया' अंतर्निहित रूप से एक स्वार्थपरायण माध्यम है। ('Social Media' is inherently a selfish medium.)

हर नया परिवर्तन अपनी परिधि में असीम संभावनाओं को समेटे होता है तो साथ ही उसके साथ अनिवार्य रूप से कुछ चिंताएँ भी जुड़ी होती हैं। सोशल मीडिया भी इसका अपवाद नहीं है। इस नए परिवर्तन में कुछ लोग असीम संभावना देख रहे हैं तो कुछ के लिये यह स्वार्थपूर्ति का माध्यम भर है।

सोशल मीडिया एक रोचक शब्द युग्म है। एक ऐसा मीडिया जो न सिर्फ समाज के होने का दावा करता है, बल्कि प्रत्यक्षत: प्रत्येक व्यक्ति को अपनी अभिव्यक्ति सार्वजनिक करने का अवसर उपलब्ध कराता है। इसी अर्थ में यह उस 'परंपरागत मीडिया' से अलग है जो समाज का होने का दावा तो करता है, किंतु समाज की प्रत्यक्ष भागीदारी को नहीं स्वीकारता। सोशल मीडिया ने एक तरह से प्रत्येक व्यक्ति को एक 'मीडिया हाउस' का मालिक बना दिया है जहाँ वह अपनी अभिव्यक्ति को टेक्स्ट, वीडियो, फोटो इत्यादि के माध्यम से प्रस्तुत करता है। अभिव्यक्ति के विस्तार को शायद ही किसी अन्य माध्यम ने उतना बढ़ाया होगा, जितना सोशल मीडिया ने। हालाँकि, ऊपरी तौर पर सोशल मीडिया जितना 'खुला' और 'सोशल' दिखता है, अपनी आंतरिक संरचना में वह उतना ही 'बंद' और 'स्वार्थपरायण' है।

सबसे पहली बात तो यह कि सोशल होने का सही अर्थ क्या है, जिस आधार पर हम यह तय कर सकें कि फेसबुक, ट्विटर, यू-ट्यूब इत्यादि जैसे प्लेटफॉर्म्स सोशल हैं या नहीं? अगर सोशल होने का अर्थ परस्पर संवाद स्थापित करने तक सीमित कर दें तथा सामूहिक होने मात्र को सोशल होना मान लें तो निश्चित रूप से ये प्लेटफॉर्म्स सोशल हैं, किंतु यदि सोशल होने का अर्थ समाज की बेहतरी तथा इसके विकास के लिये कार्य करना है तो सोशल मीडिया की पहुँच यहाँ तक नहीं हो पाई है। इस अर्थ में यह सोशल की बजाय स्वार्थी हो जाता है। सोशल मीडिया का कोई निश्चित लक्ष्य नहीं है और न ही राज्य के कानूनों से इतर इसका कोई 'सामाजिक नियम' है। इस प्रकार एक 'लक्ष्यविहीन' व 'नैतिकता के भार से मुक्त' सोशल मीडिया का स्वार्थपरायण हो जाना स्वाभाविक ही है। अभी तक सोशल मीडिया संवाद का ऐसा ढाँचा स्थापित नहीं कर पाया है जो समाज की उन्नति तक जाता हो, बल्कि यह अराजक अभिव्यक्तियों का समुच्चय मात्र बनकर रह गया है।

'सहमति निर्माण' (Manufacturing Consent) का सिद्धांत देने वाले प्रसिद्ध विद्वान 'नोम चॉम्स्की' कहते हैं कि परंपरागत कॉरपोरेट मीडिया के बरक्स सोशल मीडिया ने आम लोगों की पहुँच में वृद्धि तो की है, किंतु यह सहमति निर्माण में कहीं अधिक शक्तिशाली है। सोशल मीडिया को संचालित करने वाली संस्थाओं के पास अपने यूजर्स के पसंद-नापसंद, विचार इत्यादि के संबंध में अपार सूचनाएँ हैं, जिनका उपयोग वो 'विज्ञापनदाता को निर्देशित' करने में करती हैं। यह दो वजहों से खतरनाक है। एक तो हम जो भी अभिव्यक्त कर रहे हैं वह निजी कंपनियों द्वारा अपने 'उत्पाद निर्धारण' में उपयोग किया जा रहा है, यानी यह 'सोशल' दरअसल कुछ कंपनियों के स्वार्थ का ज़रिया मात्र बनकर रह गया है। दूसरे, इन सोशल साइट्स के संचालक काफी हद तक इस बात को प्रभावित करते हैं कि किसी खास विचार को किस प्रकार केंद्र में रखा जाए। यह अनायास नहीं है कि उत्तर कोरिया की तानाशाही के वीडियोज़ काफी तेज़ी और नियमित अंतराल पर वायरल होते रहते हैं, जबकि इसके इतर 'दूसरे' प्रकार की तानाशाही कम देखने को मिलती है, अर्थात् सोशल मीडिया शक्तिशाली के स्वार्थ को पूरा करने का एक माध्यम है।

इसके अतिरिक्त विभिन्न राजनीतिक दल व संगठनों द्वारा भी सोशल मीडिया का उपयोग अपनी स्वार्थसिद्धि के लिये किया जाता है। स्वार्थसिद्धि का अर्थ अपना प्रचार करना नहीं, बल्कि गलत तरीके से प्रचार करना है। सोशल मीडिया की संरचना ऐसी है कि जो सबसे 'पॉपुलर' है अर्थात् जिस पर लाइक और हिट्स अधिक हैं, वह अधिक स्वीकार्य हो जाता है। कुछ ही ऐसे जागरूक यूजर्स हैं जो ऐसी 'पॉपुलर खबरों' की प्रासंगिकता जाँचते हैं, जबकि अधिकांश लोग झूठी व भ्रामक खबरों को ही स्वीकार कर लेते हैं। ऐतिहासिक तथ्यों तथा किसी ऐतिहासिक व्यक्तित्व के बारे में झूठी सूचनाओं से सोशल मीडिया भरा पड़ा है। इससे उन लोगों का स्वार्थ सधता है जो एक नई झूठी दुनिया गढ़ना चाहते हैं।

Think
IAS

दृष्टि The Vision

Think
Drishti

दूरस्थ शिक्षा कार्यक्रम (Distance Learning Programme)

इस कार्यक्रम के अंतर्गत आप घर बैठे 'दृष्टि' द्वारा तैयार परीक्षोपयोगी पाठ्य-सामग्री मंगवा सकते हैं। यह पाठ्य-सामग्री विशेष रूप से ऐसे अभ्यर्थियों को ध्यान में रखकर तैयार की गई है जो दिल्ली आकर कक्षाएँ करने में असमर्थ हैं। इस कार्यक्रम के अंतर्गत सिविल सेवा और राज्य सेवा (उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, बिहार, उत्तराखंड, छत्तीसगढ़ पी.सी.एस.) परीक्षाओं की पाठ्य-सामग्री उपलब्ध कराई जाती है। यह पाठ्य-सामग्री प्रत्येक परीक्षा के नवीनतम पाठ्यक्रम के अनुरूप है और इसे विभिन्न समसामयिक घटनाओं, राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं एवं समितियों की रिपोर्टों के माध्यम से अद्यतन (up-to-date) किया गया है।

उत्तर प्रदेश पी.सी.एस. (UPPCS) के लिये

सामान्य अध्ययन + सीसैट
(प्रा.+ मुख्य परीक्षा)
(33 + 10 बुकलेट्स) (₹15,500/-)

सामान्य अध्ययन
(प्रा.+ मुख्य परीक्षा)
(33 बुकलेट्स) (₹14,000/-)

मध्य प्रदेश पी.सी.एस. (MPPCS) के लिये

सामान्य अध्ययन + सीसैट
(प्रा.+ मुख्य परीक्षा)
(28 + 8 बुकलेट्स) (₹11,000/-)

सामान्य अध्ययन
(प्रा.+ मुख्य परीक्षा)
(28 बुकलेट्स) (₹10,000/-)

उत्तराखंड पी.सी.एस. (UKPSC) के लिये

सामान्य अध्ययन + सीसैट
(प्रा.+ मुख्य परीक्षा)
(28 + 8 बुकलेट्स) (₹11,000/-)

सामान्य अध्ययन
(प्रा.+ मुख्य परीक्षा)
(28 बुकलेट्स) (₹10,000/-)

छत्तीसगढ़ पी.सी.एस. (CGPSC) के लिये

सामान्य अध्ययन + सीसैट
(प्रा.+ मुख्य परीक्षा)
(35 + 6 बुकलेट्स) (₹15,500/-)

सामान्य अध्ययन
(प्रा.+ मुख्य परीक्षा)
(35 बुकलेट्स) (₹14,000/-)

राजस्थान पी.सी.एस. (RAS/RTS) के लिये

सामान्य अध्ययन
(प्रा.+ मुख्य परीक्षा)
(34 बुकलेट्स) ₹10,500/-

बिहार पी.सी.एस. (BPSC) के लिये

सामान्य अध्ययन
(प्रा.+ मुख्य परीक्षा)
(25 बुकलेट्स) ₹10,000/-

For UPSC CSE (in English Medium)

Self Learning Modules

Students may opt for following modules

Prelims (17 GS + 3 CSAT Booklets) ₹10000/-
Mains (18 GS Booklets) ₹11000/-
Prelims + Mains (33 GS + 3 CSAT Booklets) ₹15000/-

Offer: Free 6 months subscription of Drishti Current Affairs Today magazine with every module

For UPPCS Mains (in English Medium)

Self Learning Modules

19 GS + 1 Essay +
1 Compulsory Hindi Booklets
₹11000/-

Offer: Free 6 months subscription of Drishti Current Affairs Today magazine for comprehensive coverage of current affairs

UPSC सिविल सेवा परीक्षा के लिये (हिंदी माध्यम में)

सामान्य अध्ययन
(प्रारंभिक परीक्षा)
(19 बुकलेट्स) ₹10,000/-

सामान्य अध्ययन
(मुख्य परीक्षा)
(26 बुकलेट्स) ₹13,000/-

सामान्य अध्ययन + सीसैट
(प्रारंभिक परीक्षा)
(27 बुकलेट्स) ₹13,000/-

सामान्य अध्ययन
(प्रा.+ मुख्य परीक्षा)
(31 बुकलेट्स) ₹15,000/-

सामान्य अध्ययन + सीसैट
(प्रा.+ मुख्य परीक्षा)
(39 बुकलेट्स) ₹17,500/-

इतिहास
(वैकल्पिक विषय)
(12 बुकलेट्स) ₹7,000/-

दर्शनशास्त्र
(वैकल्पिक विषय)
(4 बुकलेट्स) ₹5,000/-

हिन्दी साहित्य
(वैकल्पिक विषय)
(13 बुकलेट्स) ₹7,000/-

विस्तृत जानकारी के लिये कॉल करें : 8448485520, 87501-87501, 011-47532596

दृष्टि पब्लिकेशन्स की प्रमुख पुस्तकें

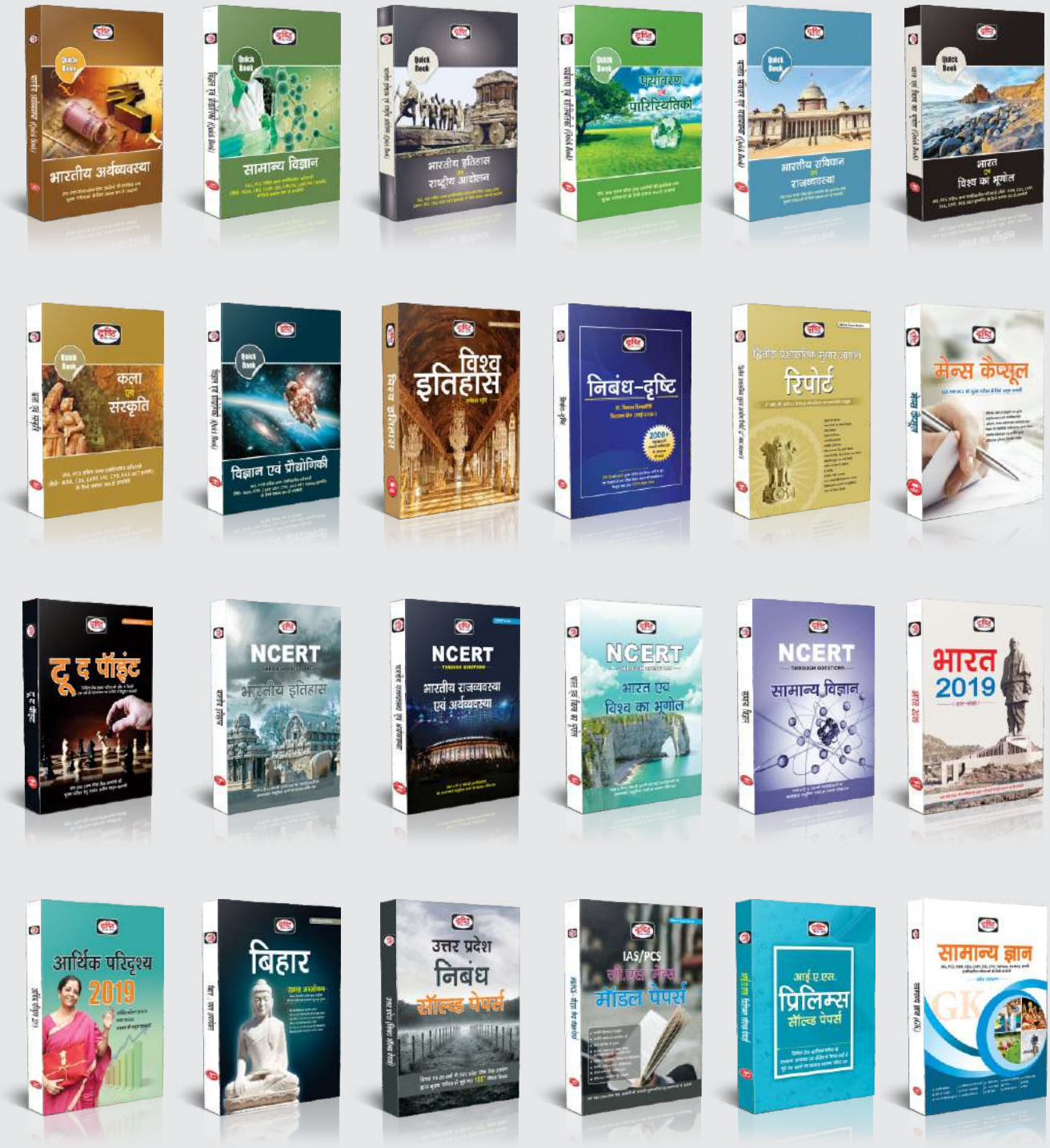

641, Ist Floor, Dr. Mukherjee Nagar, Delhi-9
Ph.: 011-47532596, 87501 87501
Website: www.drishtipublications.com, www.drishtiias.com
E-mail: booksteam@groupdrishti.com

मूल्य : ₹ 360